राष्ट्रीय छात्रशक्ति

वर्ष-47 ■ अंक-07 ■ नवम्बर 2025 ■ ₹10 ■ पृष्ठ-44

राष्ट्र की जय चेतना का गान

वंदे मातरम

खूंटी : भगवान बिरसा संदेश यात्रा का शुभारंभ करते पूर्व केंद्रीय मंत्री अर्जुन मुंडा, अभाविप के राष्ट्रीय सह संगठन मंत्री गोविंद नायक, डूसू अध्यक्ष आर्यन मान एवं अभाविप झारखंड प्रांत अध्यक्ष डा. मौसमी पॉल।

देहरादून : 71 वें राष्ट्रीय अधिवेशन के पोस्टर का विमोचन करते अभाविप क्षेत्रीय संगठन मंत्री मनोज निखरा, सह क्षेत्रीय संगठन मंत्री विपिन गुप्ता, उत्तराखंड प्रांत अध्यक्ष डा. जे. पी भट्ट, प्रांत मंत्री ऋषभ रावत, प्रांत संगठन मंत्री अंकित सुंदरियाल एवं अन्य।

राष्ट्रीय
छात्रशक्ति

शिक्षा क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष-47, अंक-07
नवम्बर 2025

संपादक
आशुतोष भटनागर
संपादक मण्डल
संजीव कुमार सिन्हा
अवनीश सिंह
अभिषेक रंजन
अजीत कुमार सिंह

संपादकीय पत्राचार
राष्ट्रीय छात्रशक्ति
26, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली - 110002.
फोन : 011-23216298
www.chhatrashakti.in
rashtriyachhatrashakti@gmail.com
www.facebook.com/Rchhatrashakti
www.twitter.com/Rchhatrashakti
www.instagram.com/ Rchhatrashakti

स्वामी, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक **राजकुमार शर्मा** द्वारा 26, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, आई.टी.ओ. के निकट, नई दिल्ली - 110002 से प्रकाशित एवं ओशियन ट्रेडिंग कं., 132 एफ. आई. ई., पटपड़गंज इण्डस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली-110092 से मुद्रित। **संपादक** *पीआरबी अधिनियम के तहत समाचारों के चयन के लिए जिम्मेवार।

अबकी बार

05 **राष्ट्र चेतना की अभिव्यक्ति**

ऐसे कम ही गीत होंगे जो गीत और नारे के रूप में अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। इसी प्रकार की...

संपादकीय	04
पांच हजार छात्रों ने एक साथ किया "वंदे मातरम" का गायन	08
लाल किला और गुरु श्री तेग बहादुर	09
सशस्त्र संघर्ष के महानायक धरती आबा बिरसा मुंडा	12
सामाजिक लोकतंत्र भी बने राजनीतिक लोकतंत्र : डा. आंबेडकर	16
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रार्थना की विशिष्टता	22
Exploring the movement through ABVP Songs	24
सुरक्षा बलों के सम्मान में अभाविप ने निकाला विजय मार्च	27
देहरादून में होगा अभाविप का 71वां राष्ट्रीय अधिवेशन	28
The rise of Islam : The Neo-Global colonial power	32
छात्रा के यौन उत्पीड़न के विरोध में अभाविप ने विश्वविद्यालय प्रशासन को सौंपा ज्ञापन	35
अभाविप के आंदोलन से झुका महाविद्यालय प्रशासन	36
डूसू कार्यकारी परिषद चुनाव में अभाविप की छह पदों पर जीत	37
विवादित शपथपत्र भरने के मुद्दे पर उच्च शिक्षा सचिव से मिला अभाविप का प्रतिनिधिमंडल	38
नवाचार और आत्मनिर्भरता पर गोलमेज सम्मेलन का आयोजन	39
National Call for Water Conservation	40
विश्वविद्यालयों में व्याप्त समस्याओं के विरुद्ध अभाविप ने निकाला धड़क मोर्चा	42

वैधानिक सूचना : राष्ट्रीय छात्रशक्ति में प्रकाशित लेख एवं विचार तथा रचनाओं में व्यक्त दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं। संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। समस्त प्रकार के विवादों का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली होगा।

संपादकीय

"माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या" का मंत्र अथर्व वेद में प्राप्त होता है। इस धरती के साथ माता का संबंध जोड़ने वाला समाज इस भारतभूमि पर अनादिकाल से रह रहा है। इसी संबंध का सम्बल लेकर भारतीय समाज ने हजार वर्षों से अधिक काल तक चले विदेशी आक्रमणों की शृंखला का अविचल सामना किया।

मुगलों के अत्याचारों से जब कश्मीर का समाज चीत्कार कर उठा तो वह सिख परम्परा के तत्कालीन गुरु तेगबहादुर की शरण में आए। देश का भ्रमण करते हुए गुरुजी समझ चुके थे कि समाज की जड़ता को तोड़ने के लिए किसी महापुरुष को बलिदान देना होगा। पुत्र गोविन्द राय के यह कहने पर कि उनसे बड़ा महापुरुष कौन है? गुरु तेगबहादुर ने देश को जगाने के लिए अपना बलिदान देने की ठान ली। दिल्ली के चांदनी चौक में उनकी आंखों के सामने ही पहले उनके तीन प्रमुख शिष्यों का बलिदान हुआ और उसके बाद गुरुजी ने आत्मोत्सर्ग किया। उनके बलिदान से देश में बलिदानों की होड़ लग गई। दशम गुरु गोविन्द सिंह ने अपने चारों पुत्र वार दिए। सारा जीवन मुगल सत्ता से संघर्ष करने में लगा दिया। यह प्रतिरोध इतना तीव्र था कि औरंगजेब जैसा क्रूर शासक भी इसका दमन नहीं कर सका। इतिहास साक्षी है कि इसके चलते प्रारंभ हुआ मुगलों का पतन उन्हें पूर्ण पराभव तक ले गया। गुरु तेगबहादुर के बलिदान का यह 350वां वर्ष है।

अंग्रेजों की दासता के बंधन काटने के लिए सामान्य नागरिक ही नहीं, सन्यासी भी युद्ध के मैदान में उतर गए, जिसका वर्षों तक अंग्रेजों में भय बना रहा।

अंग्रेजों की दासता के बंधन काटने के लिए सामान्य नागरिक ही नहीं, वह सन्यासी भी, जिन्होंने लौकिक जीवन के अपने सारे सम्बंध त्याग दिए थे, युद्ध के मैदान में उतर गए और वर्षों तक उनका भय अंग्रेजों को बना रहा। दशकों तक उस युद्ध की छाया भारतीय मानस पर बनी रही। यही कारण था कि जब बंकिम चन्द्र चटर्जी ने सन्यासी विद्रोह की पृष्ठभूमि पर 'आनंदमठ' उपन्यास लिखा तो उसमें स्वरचित गीत 'वंदे मातरम' को स्थान दिया। यह गीत न केवल स्वतंत्रता के आन्दोलन का मंत्र बन गया, अपितु आज भी प्रत्येक राष्ट्रभक्त को प्रेरणा देता है। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) के कार्यकर्ताओं के लिए तो यह ऊर्जा का अजस्र स्रोत है। बंकिम ने इस अमर गीत की रचना 1875 में की। 2025 इसके अवतरण का सार्धशती वर्ष है।

बंगाल में जब बंकिम वंदे मातरम का गान कर रहे थे, तभी झारखंड के एक जनजाति गांव उलिहातु में एक बालक ने जन्म लिया। नाम था बिरसा मुंडा। 1875 में जन्मे इस बालक ने अल्पायु में ही अंग्रेजों की कुटिलता को पहचाना। तरुणावस्था में ही उसने अपने साथ हजारों वनवासी युवाओं को जोड़ लिया। अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों और जनजाति क्षेत्रों में मतांतरण के विरुद्ध बिरसा ने अपने समाज को साथ लेकर सशस्त्र संघर्ष की अनुपम गाथा लिखी। युवा बिरसा को अपने समाज में भगवान जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। लोग उन्हें धरती आबा कह कर संबोधित करने लगे। देश-धर्म की रक्षा के लिए संघर्ष करते हुए 25 वर्ष की अल्पायु में उनका बलिदान हुआ। देश उनके जन्म की भी सार्धशती मना रहा है।

इन महापुरुषों, जिनके बलिदान ने भारत और भारतीयता के प्रवाह को कभी रुकने नहीं दिया, के पुण्य स्मरण के अवसर के साथ अभाविप के राष्ट्रीय अधिवेशन के आयोजन का संयोग समस्त कार्यकर्ताओं को प्रेरणा प्रदान करेगा, यह विश्वास है।

हार्दिक शुभकामना सहित

आपका
संपादक

राष्ट्र चेतना की अभिव्यक्ति

ऐसे कम ही गीत होंगे जो गीत और नारे के रूप में अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। इसी प्रकार की प्राचीन राष्ट्र चेतना की आधुनिक अभिव्यक्ति वंदे मातरम है। वंदे मातरम-प्रतिरोध और सामूहिक चेतना का गीत है। जब अंग्रेजी सरकार ने सरकारी कर्मचारियों को 'गॉड सेव द क्वीन' गाना अनिवार्य किया, तो उसके विरोध में बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय ने अक्षय नवमी 7 नवंबर 1875 को इस गीत को लिखा। पहली बार 7 नवंबर 1875 को वंदे मातरम गीत साहित्यिक पत्रिका बंगदर्शन में प्रकाशित हुआ और बाद में उनकी अमर कृति आनंदमठ (1882) में शामिल किया गया। इस गीत ने पिछले एक हजार वर्षों से मुस्लिम आक्रांताओं और अंग्रेजी लुटेरों के द्वारा कुचली गई भारतीयता की आत्मा के क्रांति स्वर के रूप में हर भारतीय की चेतना को जागृत किया था। भारतीय संस्कृति और राजनीतिक अस्तित्व से सराबोर यह गीत, पूरी तरह से भारतीय "स्व" के बोध में रचा गया और स्वतंत्रता संग्राम का एक ऐसा बोध वाक्य बन गया, जिसने स्वतंत्रता संग्राम का दार्शनिक, आध्यात्मिक और व्यावहारिक लक्ष्य स्पष्ट कर दिया था। इस गीत को महान कवि रवींद्रनाथ टैगोर ने स्वर और संगीत दिया। उन्होंने ही सबसे पहले 1896 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गीत को गाया था। बाद में, अरबिंदो घोष ने इसका अंग्रेजी और आरिफ मोहम्मद खान ने इसका उर्दू अनुवाद किया।

राष्ट्रवादी आंदोलन पर प्रभाव

तत्कालीन समय में वंदे मातरम पुनर्जागृत राष्ट्रवाद का प्रबल उद्घोष बनकर उभरा, जो मातृभूमि के प्रति अटूट निष्ठा और औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीक बन गया। वंदे मातरम की रचना को राष्ट्रवादी चिंतन

वंदे मातरम को समर्पित विशेष स्मारक डाक टिकट एवं सिक्का जारी

राष्ट्रीय गीत "वंदे मातरम" के 150 वर्ष पूरे होने के अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने वंदे मातरम को समर्पित एक विशेष स्मारक डाक टिकट और सिक्का जारी किया। साथ ही गत 7 नवंबर से 7 नवंबर 2026 तक वर्ष भर चलने वाले राष्ट्रव्यापी स्मरणोत्सव का औपचारिक शुभारंभ भी किया। गत 7 नवंबर को राजधानी दिल्ली स्थित इंदिरा गांधी इंडोर स्टेडियम में आयोजित एक समारोह में मुख्य कार्यक्रम के साथ-साथ समाज के सभी वर्गों के नागरिकों की भागीदारी के साथ सार्वजनिक स्थानों पर "वंदे मातरम" के पूर्ण संस्करण का सामूहिक गायन किया गया। जानकारी हो कि गत 7 नवंबर को वंदे मातरम के 150 वर्ष पूरे हो गए। राष्ट्रीय गीत "वंदे मातरम" की रचना 7 नवंबर 1875 को अक्षय नवमी के पावन अवसर पर की गई थी। मातृभूमि को शक्ति, समृद्धि और दिव्यता का प्रतीक बताते हुए इस गीत ने भारत की एकता और स्वाभिमान की जागृत भावना को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की और शीघ्र ही यह राष्ट्र भक्ति का एक स्थायी प्रतीक बन गया।

में मील का पत्थर माना जाता है, जो मातृभूमि के प्रति भक्ति और आध्यात्मिक आदर्शवाद के मेल का प्रतीक है। अंग्रेजों ने लोगों को एकजुट करने की इसकी क्षमता को पहचाना और कई स्थानों पर इसके सार्वजनिक गायन या प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दिया। इस गीत का जन मानस पर जबरदस्त प्रभाव हुआ। अक्टूबर 1905 में उत्तरी कलकत्ता में "वंदे मातरम संप्रदाय" की स्थापना हुई। इसी वर्ष कांग्रेस के वाराणसी अधिवेशन में वंदे मातरम को सभी भारतीय आयोजनों में गाने के लिए अपनाया गया।

अगस्त 1906 में बिपिन चंद्र पाल के नेतृत्व में इंग्लिश डेली बंदे मातरम की शुरुआत हुई, जिसमें बाद में श्री अरविंद संयुक्त संपादक के रूप में शामिल हुए। यह एक प्रमुख राष्ट्रवादी आवाज बन गया, जिसने आत्मनिर्भरता, एकता और औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध के विचारों का प्रसार किया। श्री अरबिंदो जैसे विचारकों का मानना था कि वंदे मातरम में आध्यात्मिक शक्ति है और यह सामूहिक चेतना को जाग्रत करता है, जिससे इसका पाठ एक राजनीतिक और आध्यात्मिक दोनों कार्य बन गया।

7 अगस्त 1905 के दिन कलकत्ता के टाउन हॉल में बंग भंग के विरोध में एकत्रित चार लाख राष्ट्रवादी विद्यार्थियों ने वंदे मातरम वाक्य का प्रयोग स्वतंत्रता के नारे के रूप में प्रयोग किया था। यह गीत बंगाल विभाजन के विरोध और स्वदेशी आंदोलन के सशक्तीकरण की प्रेरणा बना। इसके प्रभाव की तीव्रता इतनी अधिक थी कि लॉर्ड कर्ज़न ने इसे गाने वाले किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया, जो इसके राजनीतिक प्रभाव को दर्शाता है।

1907 में मैडम भीकाजी कामा ने बर्लिन के स्टटगार्ट में भारत के बाहर पहली बार तिरंगा झंडा फहराया। इस झंडे पर वंदे मातरम लिखा था। अगस्त 1909 में जब मदन लाल ढींगरा को इंग्लैंड में फांसी दी गई, तो फांसी पर चढ़ने से पहले उनके आखिरी शब्द थे वंदे मातरम।

1909 में पेरिस में रहने वाले भारतीय देशभक्तों ने जिनेवा से 'वंदे मातरम' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। अक्टूबर 1912 में गोपाल कृष्ण गोखले का केप टाउन में "वंदे मातरम" के नारे के साथ एक भव्य जुलूस के साथ स्वागत किया गया । 1923 में जब कांग्रेस अधिवेशन में इसे गाया जा रहा था, उस समय तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष मोहम्मद अली जौहर ने नाराज होकर सभा का त्याग कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि भारत विभाजन

का बीजारोपण यहीं पर हुआ। 1937 में कांग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशन में गीत के पहले दो पदों को राष्ट्र गीत के रूप में अपनाया गया। 1938 में अंग्रेजों ने एक बार फिर इस पर प्रतिबंध लगाया। तब उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्रों ने इसे सामूहिक रूप से गाया। बाद में उन्हें कार्रवाई का सामना करते हुए निष्कासित होना पड़ा था।

स्वतंत्रता के पश्चात 24 जनवरी 1950 को भारत के पहले राष्ट्रपति डा. राजेंद्र प्रसाद ने गीत को भारत के राष्ट्रीय गीत के रूप में घोषणा की। संविधान सभा में जन-गण-मन और वंदे मातरम दोनों को राष्ट्रीय प्रतीकों के रूप में अपनाने पर पूर्ण सहमति थी और इस मुद्दे पर कोई बहस नहीं हुई। डा. राजेंद्र प्रसाद ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए कहा कि स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के कारण, वंदे मातरम को राष्ट्रगान जन-गण-मन के समान दर्जा दिया जाना चाहिए और समान रूप से सम्मानित किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि एक मामला है जिस पर चर्चा होनी बाकी है, वह है राष्ट्र गान का सवाल। एक समय सोचा गया था कि यह मामला सदन के सामने लाया जाए और सदन एक प्रस्ताव पास करके इस पर फैसला ले। लेकिन ऐसा महसूस हुआ कि प्रस्ताव के माध्यम से औपचारिक निर्णय लेने के स्थान पर बेहतर होगा कि मैं राष्ट्रगान के बारे में एक बयान दूं। इसलिए मैं यह बयान दे रहा हूं। जन-गण-मन नाम के शब्दों और संगीत से बनी रचना भारत का राष्ट्रगान है, जिसमें सरकार ज़रूरत पड़ने पर शब्दों में बदलाव कर सकती है और वंदे मातरम गीत, जिसने भारत के स्वाधीनता संग्राम में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है, उसे जन-गण-मन के बराबर सम्मान दिया जाएगा और उसका दर्जा भी उसके बराबर होगा। मुझे आशा है कि इससे सदस्य संतुष्ट होंगे।

गौर करने लायक बिंदु यह भी है कि 'वंदे मातरम' गीत के आंशिक हिस्से को अपनाया गया, जिसमें कांग्रेस की हिन्दू संस्कृति के अनादर और अल्पसंख्यक तुष्टिकरण के रूप में देखा गया। भारतीय संविधान में इसके बारे में कोई स्पष्ट नियम नहीं बनाया गया, बस अनुच्छेद-51 ए में इसके सम्मान का उल्लेख मिलता है। इसके पहले दो पदों को ही राष्ट्रीय कर्तव्य के रूप में सम्मान दिया गया है। यह किसी अमर रचना के साथ की गई अभूतपूर्व छेड़छाड़ थी।

वर्तमान प्रासंगिकता

वंदे मातरम की अनुगूंज अतीत के उस पन्ने पर ले जाती है, जहां भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गुलामी के विरोध में एक दृढ़ आत्म विद्रोह का बीजारोपण हुआ। यह आज भी भारत के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का पोषक तत्व बना है। इसीलिए यह गीत आज भी वैश्विक उपनिवेशवाद और राष्ट्रीय अस्मिता को नष्ट करने वाली शक्तियों के विरुद्ध उठ खड़े होने का उत्साह संचार बना है। जिस प्रकार आनंद मठ उपन्यास में अपने मंदिर में, विद्रोही संतों ने मातृभूमि को दर्शाने वाली मां की तीन मूर्तियां रखीं : मां जो अपनी भव्य महिमा में महान और गौरवशाली, मां जो अभी दुखी और धूल में पड़ी है और मां जो भविष्य में अपनी पुरानी महिमा में पुनः प्रतिष्ठित होगी। श्री अरबिंदो के शब्दों में, "उनकी कल्पना की मां के 14 करोड़ हाथों में भिक्षा पात्र नहीं, बल्कि तेज़ धार वाली तलवारें थीं।" यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि भारतीय समाज और हिन्दू राष्ट्र की आत्मा पर घाव करने के प्रयास आज और तीव्र हो गए हैं।

आज फिर से एक बार पुनर्निर्माण में लगे अपनी पहचान के लिए संघर्ष कर रहे समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक चिंताओं को वंदे मातरम अभिव्यक्ति दे रहा है। जो लोग इस राष्ट्र गीत को साम्प्रदायिक बताकर इसे गाने से मना करते हैं, उन्हें शायद इतिहास बोध नहीं है। यह गीत राष्ट्रीय सौहार्द और राष्ट्र भक्ति का युग्म है। 20 मई 1906 को बारीसाल (जो अब बांग्लादेश में है) में एक अभूतपूर्व वंदे मातरम जुलूस निकाला गया, जिसमें दस हज़ार से अधिक लोगों ने हिस्सा लिया। हिंदू और मुसलमान दोनों ही शहर की मुख्य सड़कों पर वंदे मातरम के झंडे लेकर मार्च कर रहे थे। किसी भी राष्ट्र को सशक्त और स्वतंत्र बनाए रखने के लिए उसमें निरंतर चेतना का संचार होते रहना चाहिए। उसके युवाओं में अपनी परंपरा, संस्कृति और राष्ट्र जीवन यात्रा का बोध निरंतर होते रहना चाहिए। यह कार्य वंदे मातरम जैसे गीतों के माध्यम से सुचारू और सुगम हो जाता है। इसीलिए यह गीत भारत और उसकी आध्यात्मिक राष्ट्रीयता में आस्था रखने वालों के लिए सदैव प्रासंगिक और प्रेरक बना रहेगा। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

पांच हजार छात्रों ने एक साथ किया "वंदे मातरम" का गायन

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) द्वारा लखनऊ के बक्शी तालाब स्थित एस. आर. ग्रुप ऑफ इंस्टिट्यूशन्स में राष्ट्र गौरव एवं भारतीय एकता के प्रतीक भारत के राष्ट्रीय गीत "वंदे मातरम" की 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस अवसर पर बंकिमचंद्र चटर्जी द्वारा रचित "वंदे भारत" अमर गीत को पांच हज़ार से अधिक विद्यार्थियों ने एक साथ गाते हुए मां भारती को नमन किया। गत 7 नवंबर को आयोजित कार्यक्रम में एस.आर.ग्रुप ऑफ इंस्टिट्यूशन्स के वाइस चेयरमैन पीयूष सिंह चौहान एवं अभाविप पूर्वी उत्तर प्रदेश क्षेत्र के क्षेत्रीय संगठन मंत्री घनश्याम शाही उपस्थित रहे।

अभाविप कार्यकर्ता राष्ट्र प्रथम के भाव के साथ शैक्षणिक एवं सामाजिक परिवेश में सक्रिय हैं। अभाविप द्वारा देशभर में "वंदे मातरम" की 150वीं वर्षगांठ मनाई जा रही है। अभाविप के आगामी राष्ट्रीय अधिवेशन के प्रतीक चिह्न में भी तिरंगे रंगों का संयोजन इसी भावना का प्रतीक है। प्रांगण में विद्यार्थियों द्वारा किए गए इस सामूहिक गान से वातावरण मंत्रमुग्ध हो उठा। कार्यक्रम के दौरान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इस गीत की ऐतिहासिक भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया।

अभाविप पूर्वी उत्तर प्रदेश क्षेत्र के क्षेत्रीय संगठन मंत्री घनश्याम शाही ने कहा कि राष्ट्रीय एकात्मता एवं गौरव का प्रतीक बंकिमचंद्र चटर्जी द्वारा रचित "वंदे मातरम" गीत हमें अपने उन्नयन काल से दिशा दिखाता आया है। आज विद्यार्थियों के इतने विशाल समूह द्वारा एक स्वर में इस गीत का गान इतिहास और वर्तमान दोनों में इसकी महत्ता को पुनः स्थापित करता है। इन विद्यार्थियों को देखकर विश्वास होता है कि भारत सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ रहा है, जिसमें राष्ट्रीयता का भाव रखने वाले इन युवाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होगी।

इस अवसर पर वाइस चेयरमैन पीयूष सिंह चौहान

ने कहा कि आज का आयोजन केवल एक सांस्कृतिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि भारत की आत्मा से जुड़ने का अवसर है। जब हजारों विद्यार्थी एक स्वर में वंदे मातरम गाते हैं, तो यह भाव केवल गीत का नहीं,बल्कि एक सशक्त और एकजुट भारत के संकल्प का प्रतीक बन जाता है। ऐसे आयोजनों से विद्यार्थियों में राष्ट्रभक्ति, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना सशक्त होती है।

उधर **जादवपुर विश्वविद्यालय (कोलकाता)** में अभाविप ने एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया, जो वंदे मातरम गीत की 150वीं वर्षगांठ पर समर्पित था। आयोजन का उद्देश्य छात्रों और विश्वविद्यालय समुदाय में राष्ट्रभक्ति की भावना को बढ़ावा देना और भारतीय सांस्कृतिक विरासत को याद करना रहा। कार्यक्रम की शुरुआत विश्वविद्यालय के प्रांगण में 150 दीयों की रोशनी से की गई, जो वंदे मातरम गीत के महत्व और इसके 150 वर्ष पूरे होने का प्रतीक बनी। इस अवसर पर उपस्थित छात्रों और कार्यक्रम के प्रतिभागियों ने जोरदार "वंदे मातरम" का उद्घोष किया और राष्ट्रभक्ति के भाव को व्यक्त किया। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

लाल किला और गुरु श्री तेग बहादुर

■ प्रा. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

घटना 1675 की है। दिल्ली का लाल किला उन दिनों भारत में विदेशी सत्ता का केन्द्र था। मध्य एशिया के आक्रमणकारी मुगलों ने देश पर कब्जा कर लिया था। उनका दरबार इसी लाल किला में सजता था। उनका बादशाह इसी लाल किला में बैठ कर हिन्दुस्तान पर राज करता था। उस समय यह बादशाह औरंगजेब था, जिसे उत्तर-पश्चिम के लोग औरंगा कहते थे। औरंगजेब सारे हिन्दुस्तान को दारुल-इस्लाम बनाना चाहता था। दारुल-इस्लाम यानी इस्लाम का मुल्क। इसे वह खुदा का हुक्म मानता था। उसका मानना था कि दुनिया में प्रत्येक आदमी के पास दो ही विकल्प हैं, या तो वह मुसलमान बन जाए या फिर मरने के लिए तैयार हो जाए। वर्ग-संघर्ष टोले के इतिहासकार कहते हैं कि औरंगजेब बहुत ही ईमानदार एवं पाक साफ था। वह टोपियां तैयार करके उसे बेचता था और उस पैसे से अपना घर का खर्चा करता था। इसलिए वह सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि था। ऐसा सर्वहारा आदमी कितना धूर्त था कि उसने अपने बाप को जेल में तड़पा-तड़पा कर और भाईयों को धोखे से मारा। मरे हुए शवों का भी अपमान किया। वह टोपियां सिलता रहा और राजधर्म भूल गया।

धर्म कहता है कि किसी को गुलाम मत बनाओ। उसने और उसके पुरखों ने सदियों से भारत को गुलाम बना कर रखा हुआ था। धर्म कहता है कि गुलाम देश की प्रजा के साथ भी मानवीय व्यवहार करो। उसने प्रजा की बात तो दूर अपने बाप और भाईयों के साथ भी मानवीय व्यवहार नहीं किया। धर्म कहता है कि ईश्वर एक ही है, लेकिन उसको मानने वाले उसकी अलग-अलग रूपों में अलग-अलग प्रकार से पूजा-अर्चना करते हैं। लेकिन वह कहता था कि ईश्वर का वही रूप मान्य होगा जो इस्लाम कहता है और उसकी पूजा यानी इबादत का वही तरीका इस्तेमाल करना होगा जो इस्लाम में मान्य है। इसी को वह दारूल-इस्लाम कहता था। उसकी इस राक्षसी इच्छा को पूरा करने के लिए उसके पास फौज थी और इस्लाम की व्याख्या करने के लिए उसके पास सैय्यदों की पूरी फौज थी, जिनके पुरखे अरब देशों और मध्य एशिया से आकर राज दरबार में बस गए थे। यह सैय्यद स्वयं को हजरत मोहम्मद के दामाद अली के खानदान के बताते थे। इसलिए यह चाहते थे कि हिन्दुस्तान के लोग इनको सिजदा करें। मुसलमान बन जाएं या फिर मुगल तुर्कों की तलवार का सामना करें। इतना ही नहीं, जो भारतीय इनके भय से मुसलमान हो भी गए थे, उनको भी यह अपने मुकाबले तुच्छ मानते थे और उन भारतीय मुसलमानों के साथ भी यह सैय्यद दूसरे दर्जे का व्यवहार ही करते थे।

तत्कालीन समय में सारा देश क्रोध के मारे उबल रहा था। अन्याय का विरोध करना प्रत्येक प्राणी का धर्म है, यह बात तो हिन्दुस्तान का हर प्राणी जानता था। लेकिन औरंगजेब के समय में अपने इस धर्म का पालन करना मृत्यु को गले लगाना था। यह इतिहास का ऐसा काल था, जब अपने धर्म की रक्षा के लिए खड़े हो जाना यानी मौत से साक्षात्कार करना ही था। इसलिए पूरे हिन्दुस्तान में ऊपर से सन्नाटा था और भीतर कोलाहल था। दिल्ली का लाल किला मुगलों के अधर्म का केन्द्र बना हुआ था। ऐसा नहीं कि उसे चुनौती नहीं मिल रही थी। दक्षिण में शिवाजी महाराज ने उसकी नाक में दम कर रखा था। पूर्व में असम सेना के सेनापति लाचित बरफुकन ने औरंगजेब की सेना को धूल चटा दी थी। लेकिन लाल किला के सामने खड़े होकर चुनौती देना, जहां से अधर्म की विषबेल फल-फूल रही थी, वहीं जाकर अधर्म को ललकारना और हर हालत में अन्याय से लड़ते रहने के लिए अपने धर्म का पालन करना कितना मुश्किल था? शायद आज यह अनुभव करना सम्भव नहीं है।

काल महाबली माना जाता है। वह हर युग में धर्म की रक्षा के लिए चुनौती देता है। लेकिन उस चुनौती को स्वीकार करने की हिम्मत सभी में नहीं होती है। औरंगजेब के युग में भी महाकाल ने यही चुनौती प्रस्तुत

की थी। उस समय दशगुरु परम्परा के नवम गुरु श्री तेग बहादुर ने यह चुनौती स्वीकार की। यह इतिहास सभी जानते हैं कि किस प्रकार देश भर से विद्वान, कश्मीर के पंडित कृपा राम दत्त के नेतृत्व में हिमालय की तलहटी में आनंदपुर साहिब पहुंचे थे। देश और धर्म की रक्षा के लिए लंबी मंत्रणाएं हुईं। निष्कर्ष यही था कि मुगलों का सामना करने के लिए देश में किसी महापुरूष को अपना बलिदान देना होगा। उसी बलिदान से देश के रक्त संचार में ऊर्जा आएगी। गुरु श्री तेग बहादुर उत्तरी भारत से लेकर असम तक की यात्रा करते आए थे। वह जानते थे कि देश और धर्म की रक्षा के लिए यह बलिदान उन्हें स्वयं ही देना पड़ेगा। उनके किशोर वय के सुपुत्र गोविन्द राय ने भी कहा कि आपसे बढ़कर इस समय देश में महापुरूष कौन है? और गुरु श्री तेग बहादुर काल की चुनौती को स्वीकारने के लिए स्वयं लाल किले की ओर चल पड़े। दिल्ली में अजीब हलचल थी। यमुना में भी उफान आने वाला था। मुगल साम्राज्य के सामने बहुत बड़ी चुनौती थी। सप्तसिंधु क्षेत्र में तो इस दशगुरु परम्परा ने मानों नई चेतना पैदा कर दी थी। इस परम्परा के गुरुओं को देश के लोग सच्चा पादशाह मानते थे। मोटे तौर पर एक समानान्तर भारतीय व्यवस्था उभर रही थी और अब उस व्यवस्था के प्रतीक नवम गुरु श्री तेगबहादुर, दिल्ली में औरंगजेब की कैद में थे। चांदनी चौक में भारतीय इतिहास का एक नया पृष्ठ लिखा जाने वाला था। कोतवाली से आठ दिन बाद गुरुजी और उनके तीनों साथियों को बाहर निकाला गया।

12 मार्गशीर्ष 1732 विक्रमी सम्वत। मुगल सत्ता ने दिल्ली में मुनादी कराई कि सभी लोग चांदनी चौक में एकत्रित हों। वहां गुरुजी और उनके साथियों को शासन की नीतियों के विरोध की सजा दी जाएगी। चांदनी चौक की सुनहरी मस्जिद के पास भीड़ उमड़ पड़ी। कोतवाली से नवम गुरु श्री तेग बहादुर और उनके तीन साथियों भाई मतिदास, सतीदास और भाई दिआला को बांधकर मस्जिद के सामने लाया गया। गुरु श्री तेग बहादुर को एक बड़े पिंजरे में बन्द किया हुआ था। मुगल साम्राज्य के काजी ने सभी को इस्लाम मत में दीक्षित हो जाने के लिए कहा और डराया। लेकिन सभी ने इंकार कर दिया। उसके बाद जो अमानवीय कार्य हुआ, उससे आत्मा कांप जाती है। अब उनको इस्लाम को अस्वीकार करने के अपराध में दंड दिया जाना था। अरब नस्ल के सैय्यद काजी इस प्रकार के अपराध के लिए शरीयत में क्या दंड विधान है? इसे अच्छी तरह जानते थे। मति दास को आरा चला कर दो टुकड़ों में काट दिया गया। आरा चलाने से पहले काजी ने पूछा, कोई अंतिम इच्छा? मति दास की अंतिम इच्छा थी कि उनका मुंह गुरु श्री तेग बहादुर की ओर कर दिया जाए। कुछ दूरी पर लोहे का एक बड़ा पिंजरा रखा हुआ था। उस पिंजरे में गुरु श्री तेग बहादुर बंद थे। मति दास और गुरु जी ने एक-दूसरे की ओर जी-भर कर देखा। शायद मति दास बताना चाह रहे थे कि यमराज को सामने देख कर भी उसके चेहरे पर भय की छाया दूर-दूर तक नहीं है। मति दास ने अपने समय के इतिहास को उत्तर दे दिया था।

अब बारी भाई दियाल दास की थी। बड़े कड़ाहे में तेल खौल रहा था। फिर काजी ऊंची आवाज में कुछ बोलने लगा। लेकिन अरबी भाषा में उसकी इस चिल्लाहट को भला कौन भारतीय समझ पाता? लेकिन उसके संकेत सभी को समझ आ रहे थे। उसने हाथ हिलाया और जल्लादों ने गट्ठर की तरह बंधे हुए भाई दिआला को उठाकर खौलते तेल के कड़ाहे में डाल दिया। चारों ओर सन्नाटा छा गया। लेकिन सैय्यद काजी का अरबी भाषा में चीखना-चिल्लाना नहीं रुका। यह दूसरा बलिदान था। आरे से कटा हुआ भाई मतिदास का शरीर वहीं पड़ा था। खौलते तेल में उबल कर कोयला हो गया भाई दियाला का शरीर अभी भी तेल पर तैर रहा था और काजी मुगल साम्राज्य की विजय के गीत गाता हुआ अरबी भाषा में अभी भी चिल्ला रहा था। अपने पिंजरे में बन्द गुरु श्री तेग बहादुर यह सब देख रहे थे। वह शान्त थे।

अब बारी भाई सती दास की थी। सती दास को रूई के ढेर से ढंक दिया गया। उधर काजी अरबी में बोलने से चुप नहीं हो रहा था। उसके संकेत पर एक जल्लाद जलती हुई मशाल लेकर आया और उसने रूई के उस पहाड़ के एक सिरे को आग लगा दी। रूई की आग। बाहर का हिस्सा तो एकदम जल गया लेकिन भीतरी हिस्सा धीरे-धीरे जलने लगा और उसी की आंच में धीरे-धीरे झुलस रहे थे सती दास। पिंजरे में कैद गुरु श्री तेग बहादुर ने अपने शिष्यों का अद्भुत बलिदान देखा था। शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के सामने तन कर खड़े तीन वीर बलिदान हो गए, लेकिन भारत का भाल नहीं झुकने दिया।

औरंगजेब जानता था कि यदि गुरु श्री तेगबहादुर इस्लाम स्वीकार कर लेते है तो अधिकांश देशवासी अपना धर्म छोड़कर इस्लाम मजहब स्वीकार कर लेंगे। इसके लिए गुरुजी को प्रलोभन तो दिए ही गए,साथ ही यातनाएं भी दी गई। जब गुरुजी किसी प्रकार से नहीं डिगे तो सैय्यद मौलवियों ने उनको ललकारा यदि आप इतने ही बड़े गुरु और आध्यात्मिक पुरुष हो तो कोई चमत्कार दिखाओ। दरअसल सैय्यद मुल्ला मौलवी इन्हीं सच्चे-झूठे चमत्कारों के धोखे से आम भारतीय को डरा भी रहे थे और चमत्कृत भी कर रहे थे। इसी की आड़ में उनका मजहब परिवर्तन करते थे। सैय्यद मौलवियों का भय सप्त सिंधु क्षेत्र में बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था। उनके डेरे दिल्ली से लेकर पेशावर, मुलतान, क्वेटा और मकरान तक फैले हुए थे। प्रथम गुरु श्री नानकदेव ने अपनी लम्बी लोक चेतना यात्राओं के दौरान ऐसे बहुत से डेरों को प्रभावहीन भी किया था। दशगुरु परम्परा के कारण जो चेतना जागृत हो रही थी, उसका कारण चमत्कार नहीं थे बल्कि गुरुओं का आचरण, उनकी तपस्या, उनकी साधना और जनसेवा थी। गुरु श्री तेगबहादुर जानते थे कि यदि सैय्यदों द्वारा बिछाए गए चमत्कार के जाल में वह फंस गए तो सारी साधना एक झटके में समाप्त हो जाएगी। इसीलिए उन्होंने सैय्यद मौलवियों के चक्रव्यूह में फंसने से इंकार कर दिया।

मुगल सम्राज्य अब अपना अन्तिम हथियार अपना लेना चाहता था। मृत्यु के भय से परास्त करना। मृत्यु कितनी दारूण और यातनाकारी हो सकती है इसका एक नमूना मुगल सम्राज्य ने भाई मतीदास, भाई दयालदास और भाई सतीदास की बलि लेकर दे दिया था। वह शायद विश्वास करते थे कि इस प्रकार की दारूण मृत्यु देखकर गुरु श्री तेगबहादुर अपने पथ से विचलित होकर इस्लाम स्वीकार कर लेंगे। लेकिन गुरु श्री तेगबहादुर जानते थे कि सही रास्ता धर्म पर चलना ही है और हर व्यक्ति का धर्म है कि वह अन्याय और अत्याचार का डटकर मुकाबला करे। मुगल साम्राज्य शायद यह नहीं जानता था कि जिसके शिष्यों ने मृत्यु के सामने देवतुल्य आचरण किया था उनका गुरु किस फौलाद से बना होगा?

तीसरे पहर गुरु श्री तेगबहादुर को पिंजरे से बाहर निकाला गया। जल्लाद हाथ में नंगी तलवार लेकर खडा था। पिंजरे से बाहर निकलकर गुरु श्री तेगबहादुर ने तीनों बलिदानी शिष्यों के शवों की ओर देखा, उनकी आंखे भर आई। उनके चेहरे पर मृत्यु का भय नहीं था और एक अनोखा तेज चेहरे से प्रकट हो रहा था। काजी कलमा पढ़ रहा था। उसने हाथ ऊपर किया और जल्लाद सैय्यद जलालुद्दीन ने तलवार के एक ही वार से गुरु श्री तेगबहादुर की गर्दन को धड से अलग कर दिया। कुछ क्षणों के लिए उनका धड वैसे ही खड़ा रहा और फिर एक ओर लुढ़क गया।

देश ने लाल किले के बिल्कुल सामने मुगलों के इस्लाम का अमानवीय रूप भी देखा और अपने धर्म की रक्षा के लिए आत्म बलिदान करते हुए गुरु श्री तेग बहादुर और उनके साथियों का देवतुल्य आचरण भी देखा। यह अधर्म और धर्म की लड़ाई थी। कहा भी गया है, जहां धर्म है-वहीं विजय है। गुरु श्री तेग बहादुर के सुपुत्र श्री गोविन्द सिंह ने स्वयं अपने पिता के बलिदान के बारे में कहा था, सुरलोक में जय-जयकार हुई और मृत्युलोक में हाहाकार मच गया। यह धर्म के लिए किया गया 'साका' था। तिलक और जनेऊ इसमें प्रतीक बन गए थे।

शताब्दियां बीत गईं। 2022 की 21 अप्रैल का दिन था। इतिहास का एक चक्र पूरा हो गया था। जिस लाल किले से लगभग चार सौ साल पहले गुरु श्री तेग बहादुर के वध का फरमान जारी हुआ था, उसी लाल किले में गुरु श्री तेग बहादुर की अमर वाणी गूंज रही थी। जो लाल किला औरंगजेब के कारण अपवित्र हो गया था, आज वह गुरु श्री तेग बहादुर की वाणी से पवित्र हो रहा था। सही अर्थों में वह आज हिन्दुस्तान का किला बना था, अब तक तो वह मुगलों का ही किला था। आज गुरु श्री तेग बहादुर के अमर बलिदान के तीन सौ पचास साल हो गए हैं। उनकी पावन स्मृति को नमन। आज इतने वर्ष बीत गए। जो उस समय लाल किले का बादशाह था, उसका आज कोई नामलेवा नहीं बचा। उसकी कब्र पर दिया जलाने वाला कोई नहीं बचा। लेकिन जो उस संकट काल में हिन्दुस्तान का सच्चा पादशाह था, आज भी उसके सम्मान में करोड़ों गर्दनें झुकती हैं। वह हिन्द की चादर बन गया, धर्म का रक्षक बन गया, इसलिए अमर हो गया। ■

(लेखक, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला के पूर्व कुलपति हैं।)

सशस्त्र संघर्ष के महानायक धरती आबा बिरसा मुंडा

■ अजीत कुमार सिंह

धरती आबा बिरसा मुंडा भारतीय इतिहास में एक ऐसा व्यक्तित्व हैं, जिनके विषय में इतिहासकारों ने अपनी-अपनी सुविधानुसार अपनी लेखनी के माध्यम से समीक्षा की। धरती आबा किसी क्षेत्र या समुदाय के नायक न होकर समस्त भारतीयों के महानायक हैं। जनजातियों को शोषण से मुक्त कराना, धर्म की रक्षा करना, रोगियों एवं गरीबों की सहायता करना जैसे कार्य भगवान बिरसा के जीवन का लक्ष्य था। बिरसा मुंडा ने जबरन मत परिवर्तन के विरुद्ध जन सामान्य को जागरूक किया तथा वनवासियों की परंपराओं को जीवित रखने के लिए अथक प्रयास जीवनपर्यन्त करते रहे।

बिरसा का बचपन

भगवान बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवंबर 1875 को रांची के नजदीक खूंटी के अड़की प्रखंड अंतर्गत उलीहातु नामक गांव में हुआ था। उनके माता-पिता का नाम करमी और सुगना मुंडा था। बिरसा के पूर्वज चुटू मुंडा और नागू मुंडा थे। घर की माली हालत ठीक नहीं होने के कारण बालक बिरसा को अपने मामा के यहां आयुतबहातु जाना पड़ा। वहां पर वह दो वर्ष तक रहे और वहीं एक विद्यालय में पढ़ने लगे। बिरसा का अपने छोटी मौसी से ज्यादा लगाव था, मौसी भी उसे बहुत मानती थी। इसी बीच मौसी की शादी हो गई और बिरसा भी मौसी के साथ उनकी ससुराल चला गया। यहां बिरसा की मुलाकात ईसाई मिशन के पादरियों से हुई, जो उस समय ईसाई मत के प्रचार-प्रसार में जुटे हुए थे। बिरसा को पादरी लोग पसंद नहीं आए। बिरसा की बचपन से ही पढ़ाई में रूचि थी। बिरसा ने गांव के एक विद्यालय में दाखिला ले लिया। विद्यालय से छुट्टी मिलने के बाद वह भेड़-बकरियों को चराने के लिए भी जाते। इस दौरान भी उसके मन में पढ़ाई-लिखाई की बातें ही घूमती रहती थी। एक दिन बालक बिरसा अपनी पढ़ाई

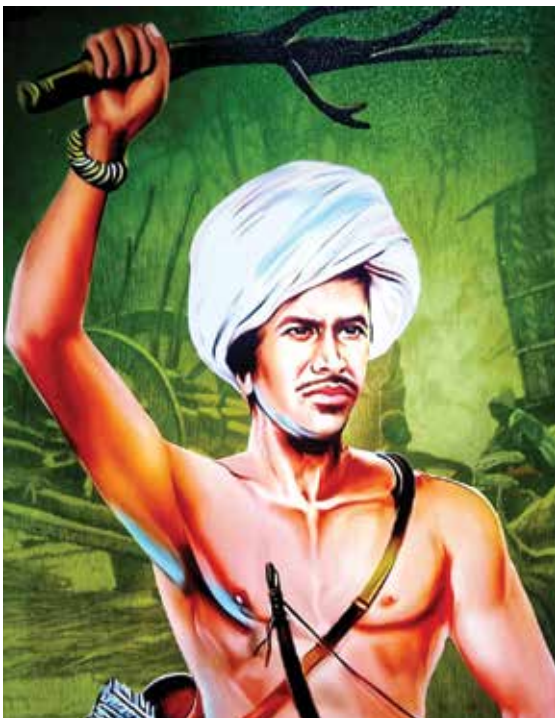

में इतना रम गए कि उन्हें याद ही नहीं रहा और उनकी भेड़-बकरियों ने खेतों में लगी फसल को खा लिया। खेत के मालिक ने बालक बिरसा की पिटाई कर दी। बिरसा की इस लापरवाही से उनके रिश्तेदार यानी मौसी और उसके ससुराल वाले भी नाराज हो गए, जिस कारण उसे मौसी का गांव का छोड़ना पड़ा। बिरसा अपने भाई कोमता मुंडा के यहां चले आए। बिरसा के पढ़ाई के प्रति रूचि और समर्पण को देखते हुए उनके भाई ने उनका दाखिला पास के ही जर्मन ईसाई मिशन स्कूल में करवा दिया। जर्मन मिशन स्कूल में नियम था कि जो बच्चे वहां पढ़ेंगे उन्हें ईसाई मत अपनाना होगा, फलस्वरूप दबाव में बिरसा को

भी अपना मत परिवर्तन करना पड़ा। मत परिवर्तन के बाद बिरसा का नाम डेविड/दाऊद रखा गया।

चाईबासा में वह 1886 से 1890 तक ही रहे। ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित होने के कारण स्कूल पर ईसाई पादरियों का व्यापक प्रभाव था। एक दिन चाईबासा मिशन में डा. नोट्रोट ने अपने उपदेश के दौरान नवीन ईसाईयों से वादा किया था यदि इस प्रांत के लोग ईसाई बने रहेंगें तो उनकी छिनी हुई जमीनें वापस करा दी जाएंगी। 1886-87 में धोखेबाजी के कारण मुंडा सरदारों का मिशनरियों से संबंध टूट गया। दूसरी बार डा. नोट्रोट ने उपदेश के दौरान नवीन ईसाईयों को धोखेबाज कहा, तब बिरसा ने उन मिशनरियों की कड़ी आलोचना की और फिर उस विद्यालय को छोड़ दिया। 1890 में बिरसा और उनके परिवार ने चाईबासा को छोड़ा एवं ईसाई मत का परित्याग कर अपने मूल धर्म की उपासना करने लगे। ईसाई मिशनरी की धूर्तता से बालक बिरसा के मन में चोट पहुंची। अपनी धर्म, जाति और संस्कृति की अस्मिता पर मंडराते खतरे को महसूस करने के बाद उन्होंने संकल्प लिया कि वह अपने समाज के लोगों के बीच जागरूकता फैलाएंगे, उन्हें उनके अधिकारों से परिचित कराकर अपने अधिकारों एवं जमीनों को वापस पाने लिए आंदोलन करेंगे।

भारतीय संस्कृति के वाहक बिरसा

भगवान बिरसा अपने धर्म, संस्कृति और परंपरा को लेकर सजग थे। धर्म और अध्यात्म के प्रति उनकी गहरी रूचि थी। कहा जाता है कि धर्म की उपासना के लिए उन्होंने चार वर्षों तक कठिन साधना भी की। वह हमेशा धोती पहनते थे, माथे पर चंदन लगाते और यज्ञोपवीत धारण करते थे। 1891 में बिरसा बंदगांव गए। इस दौरान वह स्थानीय जमींदार जगमोहन सिंह के मुंशी आनंद पांडे के संपर्क मे आए। पांडे वैष्णव भक्त थे। बिरसा ने तीन साल बंदगांव में ही व्यतीत किए। इस दौरान वैष्णव साधु से बिरसा की मुलाकात हुई। साधु बमनी बड़ाईक के यहां कथा सुनाने आया करते थे। बिरसा का वैष्णव के प्रति रूझान बढ़ता गया। बिरसा का आकर्षण भी वैष्णव के प्रति था। बिरसा भी वैष्णव बन गए। बिरसा तुलसी पूजन भी करते थे। आनंद पांडे के पास बिरसा का तीन साल गुजरा। 1893-94 तक वह वहां रहे।

...जब लोगों ने धरती आबा कहना शुरू किया

1894 में बारिश न होने के कारण भयंकर अकाल पड़ गया और महामारी फैल गई। उस समय बिरसा मुंडा एवं उनके शिष्यों ने न केवल लोगों की सेवा की, बल्कि उन्हें अंधविश्वास के जाल से बाहर निकालने का प्रयास किया। 1895 के आस-पास बिरसा भगवान की तरह उभरे। लोगों का कहना था कि बिरसा के पास चमत्कारी शक्ति है, जिससे वह सारी बीमारियां दूर कर सकते हैं। छोटानागपुर में जब अकाल पड़ा तब बिरसा ने अपने शिष्यों के साथ मिलकर लोगों की अथक सेवा और सहायता की, बिरसा की सेवा भावना ने उन्हें मनुष्य से भगवान का दर्जा दिला दिया। एक बार चलकंद में बिरसा अपने साथियों के साथ जंगल जा रहे थे, उसी समय बिजली कड़की और बिरसा पर गिरी लेकिन बिरसा को कुछ भी नहीं हुआ। साथियों ने इस कहानी को गांव वालों को सुनाया, ग्रामीण भी सुनकर आश्चर्यचकित रह गए। इसके बाद लोग उन्हें धरती आबा कहकर पुकारने लगे यानी भगवान मानने लगे। उनके प्रभाव में वृद्धि के बाद वनवासियों की चेतना जागृत हुई। वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगे। अपनी संस्कृति के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाले भगवान बिरसा ने शुद्धता, आत्म-सुधार और एकेश्वकरवाद का उपदेश दिया। उन्होंने अंग्रेजी शासन के अस्तित्व को अस्वीकार करते अपने समर्थकों एवं अनुयायियों को ब्रिटिश सरकार को लगान न देने का आदेश दिया था।

आंदोलन की पृष्ठभूमि

1895 में पोराहाट क्षेत्र में लगाए गए वन प्रतिबंध को लेकर वनवासियों के मन में भयानक आक्रोश था, क्योंकि वनवासियों की जीवनचर्या वनों से जुडी हुई थी। प्रतिबंध के कारण जनजातियों को वन एवं वन उत्पादन से वंचित कर दिया गया, परिणामस्वरूप जनजातियों के सामने बड़ी समस्या खड़ी हो गई। ब्रिटिशों के अंतहीन अत्याचार और शोषण के कारण उनके सामने भूख से मरने की हालत बन गई। ऐसे में जनजातियों ने अंग्रेजों से मांग की कि वन संबंधी जो प्रतिबंध लगाए गए हैं, उसमें छूट दी जाए, ताकि उनका जीवन-यापन चलता रहे लेकिन अंग्रेजों ने उनकी मांग को ठुकरा दिया। अंग्रेजी सरकार की अंसेवदनशीलता को देखकर बिरसा ने आंदोलन करने का संकल्प लिया और उन्होंने

वनवासियों को एकजुट करना शुरू कर दिया।

भगवान बिरसा ने समाज को संगठित करना आवश्यक समझा और सामाजिक स्तर पर काम करना शुरू किया ताकि उनका समाज जागरूक हो सके और अंधविश्वास और पाखंड के चंगुल में न फंसे। साथ ही साथ उन्होंने स्वच्छता का संस्कार दिया एवं शिक्षा के महत्व से सभी को परिचित कराया। भगवान बिरसा के इस जनजागरण से ब्रिटिश बौखला गए, साथ ही पाखंड और अंधविश्वास के नाम पर दुकानदारी चलाने वालों की स्थिति दयनीय होती चली गई। बिरसा के एक जनजागरण का प्रभाव ही था कि लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगे, परिणामस्वरूप अंग्रेज और अंग्रेज पोषित महाजन, जमींदार बिरसा के विरुद्ध षड़यंत्र रचने लगे। भगवान बिरसा की दूसरी और महत्वपूर्ण पहल थी आर्थिक सुधार। इस सुधार के माध्यम से बिरसा जनजातीय समाज को अंग्रेज और अंग्रेज पोषित जमींदारों एवं जागीरदारों के आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाना चाहते थे। उन्होंने समाज को उनकी आर्थिकी के प्रति जागरूक करना प्रारंभ कर दिया। भगवान बिरसा ने सामाजिक और आर्थिक स्तर पर जागरूक कर समाज में नई चेतना पैदा कर दी तो आर्थिक स्तर पर जनजातीय समाज शोषण के विरूद्ध संगठित होने लगा और अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गए। बिरसा मुंडा के प्रभाव की वृद्धि के बाद पूरे क्षेत्र के मुंडाओं में संगठित होने की चेतना जागी और मुंडा एकत्रित होने लगे। 1897 से 1900 के बीच मुंडाओं और अंग्रेजी सिपाहियों के बीच युद्ध होते रहे और बिरसा ने हर बार अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया।

उलगुलान का आह्वान

बिरसा ने अंग्रेजों के शोषण, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ उलगुलान का आह्वान किया। बिरसा के इस आह्वान के बाद विद्रोह की आग द्रुतगति से चारों ओर फैलने लगी। उनके आह्वान पर जनजातीय समाज में नई चेतना का संचार हुआ, लोग अपने अधिकारों के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध होने लगे। 1 अक्टूबर 1894 को बिरसा मुंडा के नेतृत्व में मुंडाओं ने अंग्रेजों से लगान (कर) माफी के लिए आंदोलन किया। 1895 में जब धरती आबा ने यात्रा निकाली तो गांव-गांव के लोगों ने इसका समर्थन किया। बिरसा के इस आंदोलन से अंग्रेजों की नींव तक हिलने लगी। देश भर में हुए इस संघर्ष से ब्रिटिश डर गये और जनजातीय समाज को बदनाम करने, बांटने की साजिश रचने लगे। 1895 में ही बिरसा मुंडा को गिरफ्तार कर हजारीबाग केन्द्रीय कारागार में दो वर्ष के लिए बंद कर दिया गया। अंग्रेजों ने कार्रवाई करते हुए बिरसा को गिरफ्तार कर लिया और दंगे फैलाने के आरोप में उनको दो वर्ष की सजा सुनाई गई। बिरसा को गिरफ्तार कर चलकद से रांची लाया गया। मुंडा और उसके सहयोगियों पर रांची के उपायुक्त न्यायालय में नवंबर 1895 में सुनवाई आरम्भ हुई। नवंबर में सुनवाई पूरी होने के बाद बिरसा एवं उनके सहयोगियों को दो-दो वर्ष की सजा सुनाई गई। साथ ही बिरसा पर 50 रुपए का आर्थिक दंड भी लगाया गया। दंड न चुका पाने के कारण छह माह की अलग से सश्रम सजा सुनाने का फैसला लिया गया। सजा सुनाने के बाद बिरसा को उनके साथियों के साथ हजारीबाग केन्द्रीय कारागार भेज दिया गया।

बिरसा के कारागार में जाने के बाद भी उनके समर्थकों ने हिम्मत नहीं हारी और बिरसा एवं उनके साथियों को कारागार से बाहर निकालने के लिए यथोचित प्रयास में लगे रहे। सजा समाप्त होने के कुछ दिन पहले ही बिरसा को रांची कारागार लाया गया और 30 नवंबर 1897 को उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। कारागार से बाहर आने के बाद बिरसा ने अपने आंदोलन की धार को और तेज कर दिया। गांव-गांव में उनके समर्थन में लोग जुटने लगे। फरवरी 1898 में मुंडाओं की एक सभा में बिरसा ने आंदोलन की नई नीति की घोषणा की, जिसमें उन्होंने अपने खोए राज्य के लिए धर्म और शांति का रास्ता अपनाने का आह्वान किया। 1898 में ही तांगा नदी के किनारे पर ब्रिटिश सैनिक का मुकाबला मुंडाओं से हुआ, प्रारंभ में यहां अंग्रेजी सैनिकों की हार हुई। बाद में इसके बदले उस क्षेत्र के जनजाति नेताओं की गिरफ्तारियां की गईं।

तत्कालीन रांची जिले के खूंटी, तोरपा, तमाड़, करी, बसिया एवं सिंहभूम जिले के चक्रधर थाने में विद्रोह की आग भड़क उठी। आंदोलनकारियों ने अंग्रेजों, पुलिस थानों एवं अंग्रेज अधिकारियों के आवास पर हमला बोल दिया। थाने के अंदर घिरे पुलिसकर्मियों ने गोली चलानी शुरू कर दी लेकिन पुलिस की गोली से कोई घायल नहीं

हुआ। इस घटना के बाद बिरसा के शिष्यों का उनके प्रति विश्वास और अधिक दृढ़ हुआ। बिरसा के नेतृत्व में आंदोलन की आग और अधिक तेजी से फैलने लगी।

अंग्रेजों के विरुद्ध बिरसा के नेतृत्व में मुंडाओं का 1897 से 1900 तक लंबा संघर्ष चला। इस बीच बिरसा और अंग्रेजों के बीच युद्ध होते रहे। जहां अंग्रेज अत्यंत आधुनिक हथियार के साथ मैदान में थे, वहीं बिरसा मुंडा के नेतृत्व में मुंडाओं की टोली अपने परंपरागत तीर-धनुष के साथ। इसी बीच अंग्रेजी अफसरों को सूचना मिली कि डोम्बारी से कुछ दूरी पर स्थित पहाड़ी पर आंदोलनकारी मुंडाओं की बैठक चल रही है। अंग्रेजी सैन्य टुकड़ी पहाड़ी की तरफ चल पड़ी।

9 जनवरी 1900 का दिन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का एक ऐसा दिन है, जिसके पन्ने सैकड़ों वनवासियों के खून से लिखे गए। खूंटी के सइलरकब के डोंबारी बुरू पर जनजातीय समाज के हजारों लोग जुटे थे। वहां महिलाएं-बच्चे भी थे। जल, जंगल और जमीन बचाने के लिए यह जुटान हो रहा था। इसी बीच अंग्रेजी सैन्य टुकड़ी वहां पहुंच गई और फिर अंग्रेज सैन्य दस्तों का सामना आंदोलनकारियों से हुआ। पारंपरिक हथियार तीर-धनुष, भाला, कुल्हाड़ी इत्यादि से लैस आंदोलनकारियों का उत्साह सातवें आसमान पर था। अंग्रेजी अधिकारियों ने बैठक कर रहे आंदोलनकारियों को आत्मसमर्पण लिए कहा परंतु जोश एवं उत्साह से भरपूर वनवासियों के सामने अंग्रेजों की एक नहीं चली, उन्होंनें आत्मसमर्पण करने से मना कर दिया। इसके बाद ब्रिटिश सैनिकों ने उन पर हमला बोल दिया। अंग्रेजों ने आंदोलनकारियों पर गोली बरसानी शुरू कर दी। वनवासियों के तरफ से तीर छोड़े जाने लगे।

ब्रिटिश सैनिक और बिरसा के नेतृत्व वाले मुंडाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ। वनवासियों ने अंग्रेजों का डटकर सामना किया परंतु आधुनिक हथियारों से लैस गोली बारूद वाली अंग्रेज सेना के सामने आखिर तीर-धनुष कब तक टिकते? देखते ही देखते डोंबारी बुरू की पहाड़ियां खून से लाल हो गईं। जनजातीय समाज ने वीरता और साहस का परिचय देते हुए मुकाबला किया लेकिन वह टिक नहीं पाए और जनजाति समाज की सैकड़ों महिलाएं और बच्चे मारे गए। क्रूर अंग्रेजी सरकार द्वारा सामूहिक कत्लेआम था।

भगवान बिरसा का बलिदान

9 जनवरी 1900 को डोंबारी बुरू की पहाड़ियों में बिरसा मुंडा के वीर योद्धाओं ने प्राणों की आहुति दी। अब अंग्रेजों ने बिरसा मुंडा की तलाश तेज कर दी। वह अग्रेजों की पकड़ से बाहर थे। इसके बाद अंग्रेजों ने बिरसा को पकड़ने के लिए कुत्सित चाल चलनी शुरू कर दी। अंग्रेजों ने बिरसा की गिरफ्तारी में सहायता करने वालों को 500 रुपए इनाम देने की घोषणा की। इसी बीच गद्दारों ने पैसों के लालच में आकर बिरसा के ठिकानों की सूचना दे दी।

अंग्रेजों ने सूचना पाकर गुपचुप तरीके से बिरसा के ठिकानों पर धावा बोलकर 03 फरवरी 1900 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया। बाद में बिरसा के कुछ अनुयायियों की भी गिरफ्तारी की गई।

गिरफ्तारी के समय भी भगवान बिरसा के मुख की लालिमा धूमिल नहीं हुई थी, उनके चेहरे पर मुस्कान थी। बिरसा ने 1897 में कारावास से मुक्त होने के बाद अंग्रेजों के विरुद्ध जिस सशस्त्र क्रांति का आह्वान किया, वह उनकी गिरफ्तारी (1900) तक चलता रहा। कारावास में दी गई यातनाओं के कारण 9 जून 1900 को रांची की जेल में ही वह खून की उल्टी कर अचेत हो गए और फिर उनकी मृत्यु हो गई। मात्र 25 साल की जिंदगी में बिरसा मुंडा ने वह कर दिखाया जो किसी मनुष्य को युगपुरुष बनाता है। जनजाति समाज ने जीते-जी ही उन्हें धरती आबा यानी धरती का भगवान माना। उनकी मृत्यु से आज तक भारतीय जनमानस के अंतर्मन में भगवान बिरसा बसे हुए हैं।

भारतीय संस्कृति, परंपरा को अक्षुण्ण रखने का संकल्प लेकर परतंत्रता की बेड़ियों से भारत माता को मुक्त कराने का स्वप्न साकार करने वाले धरती आबा भगवान बिरसा मुंडा का असमय अंत हो गया लेकिन उनके विचार सदा-सदा के लिए अमर हो गए। भगवान बिरसा के कृतित्व को याद करने के लिए ही केंद्र सरकार ने उनके जन्मदिन यानी 15 नवंबर को जनजातीय गौरव दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया। भगवान बिरसा मुंडा को आगामी पीढ़ियां याद रखते हुए उनके पदचिह्नों पर चलकर देश की एकता, अखंडता, सम्प्रभुता, संस्कृति, परंपरा एवं गौरवशाली इतिहास को अक्षुण्ण रखने लिए सदैव तत्पर रहेगी। ■

सामाजिक लोकतंत्र भी बने राजनीतिक लोकतंत्र : डा. आंबेडकर

स्वतंत्रता के बाद से अब तक अपनी यात्रा के दौरान भारतीय गणतंत्र ने कई उपलब्धियां हासिल की है। भारतीय गणतंत्र की तमाम उपलब्धियों का श्रेय भारत के उस संविधान को दिया जा सकता है, जिसकी रचना में बाबा साहब डा. भीम राव रामजी आंबेडकर की महत्वपूर्ण भूमिका रही। अपने पूरे जीवन में जाति प्रथा, अस्पृश्यता, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक एवं राजनीतिक अधिकारों से वंचित वर्ग के लिए सक्रिय रहे डा. आंबेडकर श्रमिक सुधार एवं महिला अधिकारों के नेतृत्वकर्त्ता के रूप में भी पहचाने जाते हैं। 25 नवंबर 1949 को संविधान सभा में भारतीय संविधान के रचनाकार डा. भीमराव आंबेडकर द्वारा दिया गया भाषण आज भी मानवीय चिंतन की प्रक्रिया को गति प्रदान करता है। लगभग तीन सौ सदस्यों वाली संविधान सभा की प्रारूप निर्माण समिति के अध्यक्ष डा. आंबेडकर ने यह भाषण औपचारिक रूप से अपना कार्य समाप्त करने से एक दिन पहले दिया। भाषण में उन्होंने कई चिंताएं व्यक्त की थी। साथ ही प्रजातंत्र में जन आंदोलनों का स्थान, करिश्माई नेताओं का अंधानुकरण और मात्र राजनीतिक प्रजातंत्र की सीमाएं जैसे विषयों पर उन्होंने जो विचार रखे थे- वह आज भी प्रासंगिक हैं। प्रस्तुत है उनके भाषण के सम्पादित अंश-

महोदय, संविधान सभा के काम पर नज़र डालें तो 9 दिसंबर 1946 को इसकी पहली बैठक के बाद से अब तक दो साल, ग्यारह माह और सत्रह दिन हो चुके हैं। प्रारूप समिति की बात करें तो इसे संविधान सभा ने 29 अगस्त 1947 को चुना था। इसकी पहली बैठक 30 अगस्त को हुई थी। 30 अगस्त से यह 141 दिनों तक बैठी, जिसके दौरान यह प्रारूप संविधान तैयार करने में लगी रही। प्रारूप समिति के काम करने के लिए संवैधानिक सलाहकार द्वारा एक पाठ के रूप में तैयार किए गए प्रारूप संविधान में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां शामिल थीं। प्रारूप समिति द्वारा संविधान सभा को प्रस्तुत किए गए पहले प्रारूप संविधान में 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। विचार-विमर्श के चरण के अंत में प्रारूप संविधान में अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 386 हो गई। अपने अंतिम रूप में प्रारूप संविधान में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हैं। प्रारूप संविधान में पेश किए गए संशोधनों की कुल संख्या लगभग 7,635 थी। मैं इन तथ्यों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं क्योंकि एक समय ऐसा भी था जब यह कहा जा रहा था कि संविधान सभा ने अपना काम पूरा करने में बहुत समय लगा दिया है, यह बहुत ही आराम से चल रही है और जनता का पैसा बरबाद कर रही है। यह कहा गया कि जब रोम जल रहा था तो नीरो बांसुरी बजा रहा था। क्या इस शिकायत का कोई औचित्य है? मुझे विलंब का आरोप पूरी तरह निराधार लगता है और यह सभा इतने कम समय में इतना कठिन कार्य पूरा करने के लिए स्वयं को बधाई दे सकती है।

प्रारूप समिति द्वारा किए गए कार्य की गुणवत्ता की बात करें तो श्री नजीरुद्दीन अहमद ने इसकी कड़ी निंदा करना अपना कर्तव्य समझा। उनके विचार में प्रारूप समिति द्वारा किया गया कार्य न केवल प्रशंसनीय नहीं है, बल्कि निश्चित रूप से निम्न स्तर का है। श्री नजीरुद्दीन अहमद का मानना है कि वह प्रारूप समिति

के किसी भी सदस्य से अधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। प्रारूप समिति उनके दावे को चुनौती नहीं देना चाहती। दूसरी ओर, यदि संविधान सभा उन्हें इस योग्य समझती तो प्रारूप समिति उनका अपने बीच स्वागत करती। यदि संविधान निर्माण में उनका कोई स्थान नहीं था तो इसमें प्रारूप समिति का कोई दोष नहीं है।

मुझे जो श्रेय दिया जाता है, वह वास्तव में मेरा नहीं है। इसका कुछ श्रेय संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार सर बी. एन. राव को भी जाता है, जिन्होंने प्रारूप समिति के विचारार्थ संविधान का एक कच्चा मसौदा तैयार किया था। इसका कुछ श्रेय प्रारूप समिति के सदस्यों को भी जाता है, जिन्होंने, जैसा कि मैंने कहा, 141 दिनों तक बैठक की और नए-नए फार्मूले तैयार करने की उनकी चतुराई तथा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को सहन करने और समायोजित करने की क्षमता के बिना संविधान निर्माण का कार्य इतने सफल निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाता। इसका बहुत बड़ा श्रेय संविधान के मुख्य प्रारूपकार एस. एन. मुखर्जी को जाता है। वह संविधान सभा के लिए बहुत मूल्यवान रहे हैं। उनकी मदद के बिना, इस सभा को संविधान को अंतिम रूप देने में कई और वर्ष लग जाते। ऐसे कई मौके आए जब प्रारूप समिति के संशोधनों को विशुद्ध रूप से तकनीकी आधार पर रोकने की कोशिश की गई। वह मेरे लिए बहुत चिंताजनक क्षण थे। इसलिए, मैं संविधान निर्माण के काम को विफल करने के लिए विधिवाद की अनुमति न देने के लिए आपका विशेष रूप से आभारी हूं।

संविधान का जितना बचाव किया जा सकता था, मेरे मित्रों सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर और श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने किया है। इसलिए मैं संविधान के गुणों पर चर्चा नहीं करूंगा क्योंकि मुझे लगता है कि संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, यह निश्चित रूप से बुरा ही होगा, क्योंकि इसे लागू करने वाले लोग बुरे होते हैं। संविधान कितना भी बुरा क्यों न हो, यह अच्छा ही होगा, अगर इसे लागू करने वाले लोग अच्छे होते हैं। संविधान का काम करना पूरी तरह संविधान की प्रकृति पर निर्भर नहीं करता। संविधान केवल राज्य के अंगों जैसे विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका को ही प्रदान कर सकता है। राज्य के उन अंगों का काम करना जिन कारकों पर निर्भर करता है, वह हैं लोग और वह राजनीतिक दल जिन्हें वह अपनी इच्छाओं और अपनी राजनीति को पूरा करने के लिए अपने साधन के रूप में स्थापित करेंगे। कौन कह सकता है कि भारत के लोग और उनके उद्देश्य क्या हैं या वह उन्हें प्राप्त करने के लिए क्रांतिकारी तरीकों को पसंद करेंगे? अगर वह पैगंबर को अपनाते हैं तो यह विफल हो जाएगा। इसलिए, संविधान पर कोई भी निर्णय पारित करना व्यर्थ है, बिना इस बात पर ध्यान दिए कि जनता और उनके दलों को कितना हिस्सा चुकाना होगा।

संविधान की निंदा मुख्यतः दो पक्षों से होती है, कम्युनिस्ट पार्टी और समाजवादी पार्टी। वह संविधान की निंदा क्यों करते हैं? क्या इसलिए कि यह वास्तव में एक बुरा संविधान है? मैं 'नहीं' कहने का साहस करता हूं। कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के सिद्धांत पर आधारित संविधान चाहती है। वह संविधान की निंदा करते हैं क्योंकि यह संसदीय लोकतंत्र पर आधारित है। समाजवादी दो चीजें चाहते हैं। पहली चीज जो वह चाहते हैं, वह यह है कि अगर वह सत्ता में आते हैं, तो संविधान उन्हें बिना किसी मुआवजे के सभी निजी संपत्ति का राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण करने की स्वतंत्रता दे। दूसरी चीज जो समाजवादी चाहते हैं, वह यह है कि संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार निरपेक्ष और बिना किसी सीमा के होने चाहिए ताकि अगर उनकी पार्टी सत्ता में आने में विफल हो जाती है, तो उन्हें न केवल आलोचना करने की, बल्कि राज्य को उखाड़ फेंकने की भी पूरी स्वतंत्रता होगी।

यह मुख्य आधार हैं जिनके आधार पर संविधान की निंदा की जा रही है। मैं यह नहीं कहता कि संसदीय लोकतंत्र का सिद्धांत ही राजनीतिक लोकतंत्र का आदर्श रूप है। मैं यह नहीं कहता कि बिना मुआवजे के निजी संपत्ति का अधिग्रहण न करने का सिद्धांत इतना पवित्र है कि इससे कोई विचलन नहीं हो सकता। मैं यह नहीं कहता कि मौलिक अधिकार कभी भी निरपेक्ष नहीं हो सकते और उन पर लगाई गई सीमाएं कभी भी नहीं हटाई जा सकतीं। मैं यह जरूर कहता हूं कि संविधान में शामिल सिद्धांत वर्तमान पीढ़ी के विचार हैं या अगर आपको यह अतिशयोक्ति लगे तो मैं कहूंगा कि वह संविधान सभा के सदस्यों के विचार हैं। उन्हें संविधान में शामिल करने के लिए प्रारूप समिति को क्यों दोष दिया

जाए? मैं कहता हूं कि संविधान सभा के सदस्यों को भी क्यों दोष दिया जाए? मैं संविधान के किसी भी आलोचक को चुनौती देता हूं कि वह यह साबित करे कि दुनिया में कहीं भी किसी भी संविधान सभा ने, जिन परिस्थितियों में यह देश खुद को पाता है, संविधान में संशोधन के लिए ऐसी सरल प्रक्रिया प्रदान की है। यदि संविधान से असंतुष्ट लोगों को केवल दो-तिहाई बहुमत प्राप्त करना है और यदि वह वयस्क मताधिकार से निर्वाचित संसद में अपने पक्ष में दो-तिहाई बहुमत भी प्राप्त नहीं कर सकते, तो संविधान के प्रति उनके असंतोष को आम जनता द्वारा साझा नहीं किया जा सकता।

संवैधानिक महत्व का केवल एक बिंदु है, जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं। इस आधार पर गंभीर शिकायत की गई है कि केंद्रीकरण बहुत अधिक है और राज्यों को नगरपालिकाओं में बदल दिया गया है। यह स्पष्ट है कि यह दृष्टिकोण न केवल अतिशयोक्ति है, बल्कि संविधान के उद्देश्य को लेकर गलतफहमी पर आधारित है। केंद्र और राज्यों के बीच संबंधों के बारे में, उस मूल सिद्धांत को ध्यान में रखना आवश्यक है जिस पर यह आधारित है। संघवाद का मूल सिद्धांत यह है कि केंद्र और राज्यों के बीच विधायी और कार्यकारी अधिकार केंद्र द्वारा बनाए जाने वाले किसी कानून द्वारा नहीं, बल्कि संविधान द्वारा विभाजित किए जाते हैं। संविधान यही करता है। हमारे संविधान के तहत राज्य किसी भी तरह से अपने विधायी या कार्यकारी अधिकार के लिए केंद्र पर निर्भर नहीं हैं। इस मामले में केंद्र और राज्य समान हैं। यह समझना कठिन है कि ऐसे संविधान को केंद्रीयवाद कैसे कहा जा सकता है? हो सकता है कि संविधान केंद्र को अपने विधायी और कार्यकारी अधिकार के संचालन के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र सौंपता है, जितना किसी अन्य संघीय संविधान में नहीं पाया जाता है। हो सकता है कि अवशिष्ट शक्तियां केंद्र को दी गई हों, न कि राज्यों को। लेकिन यह विशेषताएं संघवाद का सार नहीं हैं। जैसा कि मैंने कहा, संघवाद का मुख्य चिह्न संविधान द्वारा केंद्र और इकाइयों के बीच विधायी और कार्यकारी प्राधिकरण का विभाजन है। यह हमारे संविधान में निहित सिद्धांत है। इस बारे में कोई गलती नहीं हो सकती। इसलिए, यह कहना गलत है कि राज्यों को केंद्र के अधीन रखा गया है। केंद्र अपनी इच्छा से उस विभाजन की सीमा को नहीं बदल सकता, न ही न्यायपालिका। जैसा कि ठीक ही कहा गया है-

"न्यायालय संशोधन कर सकते हैं, प्रतिस्थापित नहीं कर सकते। वह पहले की व्याख्याओं को संशोधित कर सकते हैं क्योंकि नए तर्क, नए दृष्टिकोण प्रस्तुत किए जाते हैं, वह सीमांत मामलों में विभाजन रेखा को स्थानांतरित कर सकते हैं, लेकिन ऐसी बाधाएं हैं जिन्हें वह पार नहीं कर सकते, शक्ति के निश्चित असाइनमेंट जिन्हें वह पुनः आवंटित नहीं कर सकते। वह मौजूदा शक्तियों का व्यापक निर्माण कर सकते हैं, लेकिन वह एक प्राधिकरण को स्पष्ट रूप से दूसरे को दी गई शक्तियां नहीं दे सकते"। इसलिए, संघवाद को पराजित करने वाले केन्द्रीयकरण का पहला आरोप अवश्य समाप्त होना चाहिए।

दूसरा आरोप यह है कि केंद्र को राज्यों को दरकिनार करने की शक्ति दी गई है। इस आरोप को स्वीकार किया जाना चाहिए। लेकिन संविधान में ऐसी सर्वोच्च शक्तियां होने की निंदा करने से पहले कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिए। पहली बात यह है कि यह सर्वोच्च शक्तियां संविधान की सामान्य विशेषता नहीं हैं। इनका उपयोग और संचालन स्पष्ट रूप से केवल आपात स्थितियों तक ही सीमित है। दूसरा विचार यह है, क्या हम आपातकाल की स्थिति में केंद्र को सर्वोच्च शक्तियां देने से बच सकते हैं? जो लोग आपातकाल में भी केंद्र को ऐसी सर्वोच्च शक्तियां देने के औचित्य को स्वीकार नहीं करते हैं, उन्हें इस समस्या का स्पष्ट अंदाजा नहीं है जो मामले के मूल में है। इस समस्या को एक लेखक ने उस प्रसिद्ध पत्रिका "द राउंड टेबल" के दिसंबर 1935 के अंक में इतनी स्पष्टता से प्रस्तुत किया है कि मैं उसमें से निम्नलिखित अंश उद्धृत करने के लिए कोई क्षमा नहीं मांगता। लेखक कहते हैं:

"राजनीतिक व्यवस्था अधिकारों और कर्तव्यों का एक जटिल समूह है जो अंततः इस प्रश्न पर आधारित है कि नागरिक किसके प्रति या किस प्राधिकरण के प्रति निष्ठा रखता है। सामान्य मामलों में यह प्रश्न मौजूद नहीं है, क्योंकि कानून सुचारू रूप से काम करता है, और एक व्यक्ति, एक मामले में एक प्राधिकरण और दूसरे मामले में दूसरे प्राधिकरण का पालन करते हुए अपना काम करता है। लेकिन संकट के क्षण में, दावों

का टकराव पैदा हो सकता है और तब यह स्पष्ट हो जाता है कि अंतिम निष्ठा को विभाजित नहीं किया जा सकता है। निष्ठा के मुद्दे को अंतिम उपाय के रूप में कानून की न्यायिक व्याख्या द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता है। कानून को तथ्यों के अनुरूप होना चाहिए या कानून के लिए उतना ही बुरा। जब सभी औपचारिकता हटा दी जाती हैं, तो एकमात्र प्रश्न यह है कि नागरिक की शेष निष्ठा किस प्राधिकरण के पास है। क्या यह केंद्र या संविधान निर्माता राज्य है?"

इस समस्या का समाधान इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है जो कि समस्या का मूल है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि अधिकांश लोगों की राय में, आपातकाल में नागरिक की शेष निष्ठा केंद्र के प्रति होनी चाहिए, न कि संविधान-राज्यों के प्रति। क्योंकि केवल केंद्र ही है जो एक साझा लक्ष्य और पूरे देश के सामान्य हितों के लिए काम कर सकता है। इसी में सभी केंद्रों को आपातकाल में प्रयोग की जाने वाली कुछ अत्यावश्यक शक्तियां देने का औचित्य निहित है। और आखिर इन आपातकालीन शक्तियों द्वारा संविधान-राज्यों पर क्या दायित्व लगाया गया है? इससे अधिक कुछ नहीं कि आपातकाल में उन्हें अपने स्थानीय हितों के साथ-साथ पूरे राष्ट्र की राय और हितों को भी ध्यान में रखना चाहिए। केवल वह लोग ही इसके विरुद्ध शिकायत कर सकते हैं, जिन्होंने समस्या को नहीं समझा है।

मैं अपनी बात यहीं समाप्त कर सकता था। लेकिन मेरा मन हमारे देश के भविष्य के बारे में इतना सोच रहा है कि मुझे लगता है कि इस अवसर पर मुझे इस विषय पर अपने कुछ विचार व्यक्त करने चाहिए। 26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र देश होगा। उसकी स्वतंत्रता का क्या होगा? क्या वह अपनी स्वतंत्रता बरकरार रखेगा या फिर उसे खो देगा? यह पहला विचार है जो मेरे मन में आता है। ऐसा नहीं है कि भारत कभी स्वतंत्र देश नहीं था। मुद्दा यह है कि उसने एक बार अपनी स्वतंत्रता खो दी थी। क्या वह उसे दूसरी बार खोएगा? यह विचार ही है जो मुझे भविष्य के लिए सबसे अधिक चिंतित करता है। जो बात मुझे सबसे अधिक परेशान करती है वह यह है कि भारत ने न केवल एक बार पहले अपनी स्वतंत्रता खोई है, बल्कि उसने इसे अपने ही कुछ लोगों की बेवफाई और विश्वासघात के कारण खो दिया। क्या इतिहास खुद को दोहराएगा? यही विचार मुझे चिंता से भर देता है। यह चिंता इस तथ्य के अहसास से और भी बढ़ जाती है कि जाति और धर्म के रूप में हमारे पुराने शत्रुओं के अलावा हमारे पास कई राजनीतिक दल होंगे, जिनके राजनीतिक धर्म अलग-अलग और विरोधी होंगे। क्या भारतीय देश को अपने धर्म से ऊपर रखेंगे या धर्म को देश से ऊपर रखेंगे? मुझे नहीं पता। लेकिन इतना तो तय है कि अगर दल धर्म को देश से ऊपर रखेंगे, तो हमारी स्वतंत्रता दूसरी बार खतरे में पड़ जाएगी और शायद हमेशा के लिए खो जाएगी। इस संभावना से हम सभी को दृढ़ता से बचना चाहिए। हमें अपने खून की आखिरी बूंद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए दृढ़ संकल्पित होना चाहिए।

26 जनवरी 1950 को भारत इस मायने में लोकतांत्रिक देश होगा कि उस दिन से भारत में जनता की, जनता द्वारा और जनता के लिए सरकार होगी। मेरे मन में भी यही विचार आता है। उसके लोकतांत्रिक संविधान का क्या होगा? क्या वह इसे बनाए रख पाएगी या फिर इसे फिर से खो देगी। यह दूसरा विचार है जो मेरे मन में आता है और मुझे पहले विचार जितना ही चिंतित करता है।

ऐसा नहीं है कि भारत को लोकतंत्र का ज्ञान नहीं था। एक समय था जब भारत में गणतंत्र थे और जहां राजतंत्र थे भी, वह या तो निर्वाचित थे या सीमित थे। वह कभी भी निरंकुश नहीं थे। ऐसा नहीं है कि भारत को संसद या संसदीय प्रक्रिया का ज्ञान नहीं था। बौद्ध भिक्षु संघों के अध्ययन से पता चलता है कि न केवल संसदें थीं-क्योंकि संघ संसद के अलावा और कुछ नहीं थे, बल्कि संघ आधुनिक समय में ज्ञात संसदीय प्रक्रिया के सभी नियमों को जानते और उनका पालन करते थे। उनके पास बैठने की व्यवस्था, प्रस्तावों, संकल्पों, कोरम, व्हिप, मतों की गिनती, मतपत्र द्वारा मतदान, निंदा प्रस्ताव, नियमन, न्यायिक निर्णय आदि के संबंध में नियम थे। यद्यपि संसदीय प्रक्रिया के यह नियम बुद्ध द्वारा संघों की बैठकों में लागू किए गए थे, लेकिन उन्होंने उन्हें अपने समय में देश में कार्यरत राजनीतिक सभाओं के नियमों से उधार लिया होगा।

भारत ने यह लोकतांत्रिक व्यवस्था खो दी है। क्या वह इसे दूसरी बार भी खो देगा? मुझे नहीं पता। लेकिन

भारत जैसे देश में यह बहुत संभव है-जहां लोकतंत्र को लंबे समय से इस्तेमाल न किए जाने के बाद एक बिल्कुल नई चीज़ के रूप में देखा जाना चाहिए-लोकतंत्र के तानाशाही में बदलने का ख़तरा है। यह बहुत संभव है कि यह नवजात लोकतंत्र अपने स्वरूप को बनाए रखे लेकिन वास्तव में तानाशाही को जगह दे। अगर भारी बहुमत मिलता है, तो दूसरी संभावना के वास्तविकता में बदल जाने का खतरा बहुत ज्यादा है। अगर हम लोकतंत्र को सिर्फ़ दिखावे में ही नहीं, बल्कि वास्तव में भी बनाए रखना चाहते हैं, तो हमें क्या करना चाहिए? मेरी राय में सबसे पहली चीज़ जो हमें करनी चाहिए, वह है अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक तरीकों को मज़बूती से अपनाना। इसका मतलब है कि हमें क्रांति के खूनी तरीकों को छोड़ देना चाहिए। इसका मतलब है कि हमें सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह के तरीकों को छोड़ देना चाहिए। जब आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक तरीकों के लिए कोई रास्ता नहीं बचा था, तो असंवैधानिक तरीकों के लिए बहुत औचित्य था। लेकिन जहां संवैधानिक तरीके खुले हैं, वहां इन असंवैधानिक तरीकों के लिए कोई औचित्य नहीं हो सकता। यह तरीके अराजकता के व्याकरण के अलावा और कुछ नहीं हैं और जितनी जल्दी इन्हें छोड़ दिया जाए, हमारे लिए उतना ही बेहतर है।

दूसरी बात जो हमें करनी चाहिए, वह है जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा लोकतंत्र को बनाए रखने में रुचि रखने वाले सभी लोगों को दी गई चेतावनी का पालन करना, अर्थात " अपनी स्वतंत्रता को किसी महान व्यक्ति के चरणों में न रखें, या उसे ऐसी शक्तियां न सौंपें जो उसे उनकी संस्थाओं को नष्ट करने में सक्षम बनाती हैं। देश को जीवन भर सेवा देने वाले महान पुरुषों के प्रति कृतज्ञ होने में कुछ भी गलत नहीं है। लेकिन कृतज्ञता की भी सीमाएं होती हैं। जैसा कि आयरिश देशभक्त डेनियल ओ'कोनेल ने ठीक ही कहा है, कोई भी व्यक्ति अपने सम्मान की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकता, कोई भी महिला अपनी पवित्रता की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकती और कोई भी राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकता। यह सावधानी भारत के मामले में किसी भी अन्य देश की तुलना में कहीं अधिक आवश्यक है। क्योंकि भारत में, भक्ति या जिसे भक्ति का मार्ग या नायक-पूजा कहा जा सकता है, उसकी राजनीति में एक ऐसी भूमिका निभाती है, जो दुनिया के किसी भी अन्य देश की राजनीति में निभाई जाने वाली भूमिका से बेजोड़ है। धर्म में भक्ति आत्मा की मुक्ति का मार्ग हो सकती है। लेकिन राजनीति में भक्ति या नायक-पूजा निश्चित रूप से पतन और अंततः तानाशाही का मार्ग है।

तीसरी बात जो हमें करनी चाहिए, वह है केवल राजनीतिक लोकतंत्र से संतुष्ट नहीं होना। हमें अपने राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र भी बनाना चाहिए। राजनीतिक लोकतंत्र तब तक नहीं टिक सकता जब तक कि उसके मूल में सामाजिक लोकतंत्र न हो। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है एक ऐसी जीवन पद्धति जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में मान्यता देती है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के इन सिद्धांतों को एक त्रिमूर्ति में अलग-अलग वस्तुओं के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। वह इस अर्थ में त्रिमूर्ति का एक संघ बनाते हैं कि एक को दूसरे से अलग करना लोकतंत्र के मूल उद्देश्य को ही नष्ट करना है। स्वतंत्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता, समानता को स्वतंत्रता से अलग नहीं किया जा सकता। न ही स्वतंत्रता और समानता को बंधुत्व से अलग किया जा सकता है। समानता के बिना स्वतंत्रता बहुतों पर कुछ लोगों की सर्वोच्चता पैदा करेगी। स्वतंत्रता के बिना समानता व्यक्तिगत पहल को खत्म कर देगी। बंधुत्व, स्वतंत्रता और समानता के बिना चीजों का स्वाभाविक क्रम नहीं बन सकता। उन्हें लागू करने के लिए एक कांस्टेबल की आवश्यकता होगी।

हमें इस तथ्य को स्वीकार करके शुरुआत करनी चाहिए कि भारतीय समाज में दो चीजों का पूर्ण अभाव है। इनमें से एक है समानता। सामाजिक धरातल पर, भारत में एक ऐसा समाज है जो क्रमिक असमानता के सिद्धांत पर आधारित है जो कुछ लोगों के लिए उन्नति और दूसरों के लिए अवनति है। आर्थिक धरातल पर, एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ लोगों के पास अपार संपत्ति है जबकि कई लोग घोर गरीबी में रहते हैं। 26 जनवरी 1950 को, हम विरोधाभासों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हमारे

पास समानता होगी और सामाजिक और आर्थिक जीवन में हमारे पास असमानता होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक वोट और एक वोट एक मूल्य के सिद्धांत को मान्यता देंगे। हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में, हम अपनी सामाजिक और आर्थिक संरचना के कारण, एक व्यक्ति, एक मूल्य के सिद्धांत को नकारते रहेंगे। हम कब तक विरोधाभासों का यह जीवन जीते रहेंगे? हम कब तक अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारते रहेंगे? अगर हम इसे लंबे समय तक नकारते रहेंगे, तो हम अपने राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में डाल देंगे। हमें इस विरोधाभास को जल्द से जल्द दूर करना होगा अन्यथा असमानता से पीड़ित लोग राजनीतिक लोकतंत्र की संरचना को नष्ट कर देंगे जिसे विधानसभा ने कड़ी मेहनत से बनाया है।

दूसरी चीज़ जो हम चाहते हैं, वह है बंधुत्व के सिद्धांत को मान्यता देना। बंधुत्व का क्या अर्थ है? बंधुत्व का अर्थ है सभी भारतीयों का समान भाईचारा - यानी सभी भारतीय एक ही राष्ट्र हैं। यह वह सिद्धांत है जो सामाजिक जीवन में एकता और एकजुटता प्रदान करता है। इसे प्राप्त करना एक कठिन कार्य है। मुझे वह दिन याद हैं जब राजनीतिक सोच वाले भारतीय, "भारत के लोग" शब्द से चिढ़ते थे। वह "भारतीय राष्ट्र" शब्द को प्राथमिकता देते थे। मेरा मानना है कि यह मानकर कि हम एक राष्ट्र हैं, हम एक बहुत बड़ा भ्रम पाल रहे हैं। हजारों जातियों में विभाजित लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं? जितनी जल्दी हम यह समझ लें कि हम अभी भी दुनिया के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अर्थों में एक राष्ट्र नहीं हैं, हमारे लिए उतना ही बेहतर होगा। क्योंकि तभी हम एक राष्ट्र बनने की आवश्यकता को समझ पाएंगे और लक्ष्य को प्राप्त करने के तरीकों और साधनों के बारे में गंभीरता से सोच पाएंगे। इस लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत कठिन होने जा रहा है - संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में कहीं अधिक कठिन। संयुक्त राज्य अमेरिका में कोई जाति समस्या नहीं है। भारत में जातियां हैं। वह सामाजिक जीवन में अलगाव लाती हैं। अगर हम वास्तव में एक राष्ट्र बनना चाहते हैं तो हमें इन सभी कठिनाइयों को दूर करना होगा। क्योंकि बंधुत्व तभी एक तथ्य हो सकता है जब एक राष्ट्र हो। बंधुत्व के बिना समानता और स्वतंत्रता केवल दिखावे के रंग से अधिक गहरी नहीं होंगी।

यह मेरे विचार हैं उन कार्यों के बारे में जो हमारे सामने हैं। हो सकता है कि यह कुछ लोगों को बहुत पसंद न आएं। लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि इस देश में राजनीतिक सत्ता लंबे समय से कुछ लोगों के एकाधिकार में रही है और बहुत से लोग न केवल बोझ ढोने वाले जानवर हैं, बल्कि शिकारी जानवर भी हैं। इस एकाधिकार ने न केवल उन्हें बेहतरी के उनके अवसर से वंचित किया है, बल्कि इसने उन्हें जीवन के उस महत्व से भी वंचित कर दिया है जिसे जीवन का महत्व कहा जा सकता है। यह दलित वर्ग शासित होने से थक चुके हैं। वह स्वयं शासन करने के लिए अधीर हैं। दलित वर्गों में आत्म-साक्षात्कार की इस चाह को वर्ग संघर्ष या वर्ग युद्ध में नहीं बदलने देना चाहिए। इससे सदन में विभाजन हो जाएगा। वह वास्तव में एक विनाशकारी दिन होगा।

स्वतंत्रता निस्संदेह खुशी की बात है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस स्वतंत्रता ने हम पर बहुत बड़ी जिम्मेदारियां डाल दी हैं। स्वतंत्रता के साथ ही हमने किसी भी गलत काम के लिए अंग्रेजों को दोषी ठहराने का बहाना खो दिया है। अगर भविष्य में कुछ गलत हुआ तो हमें खुद को छोड़कर किसी को भी दोषी नहीं ठहराना होगा। चीजों के गलत होने का बहुत खतरा है। समय तेजी से बदल रहा है। हमारे अपने लोग भी नई विचारधाराओं से प्रेरित हो रहे हैं। वह जनता द्वारा सरकार से ऊब चुके हैं। वह जनता के लिए सरकार बनाने को तैयार हैं और उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह जनता की सरकार है या जनता द्वारा। अगर हम उस संविधान की रक्षा करना चाहते हैं जिसमें हमने जनता की, जनता के लिए और जनता द्वारा सरकार के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है, तो आइए संकल्प लें कि हम अपने रास्ते में आने वाली उन बुराइयों को पहचानने में ढिलाई न बरतें जो लोगों को जनता द्वारा सरकार की बजाए जनता के लिए सरकार चुनने के लिए प्रेरित करती हैं, और न ही उन्हें दूर करने की हमारी पहल में कमज़ोर पड़ें। देश की सेवा करने का यही एकमात्र तरीक़ा है। मुझे इससे बेहतर कोई और तरीका नहीं पता। ■

(प्रस्तुति : संजय दीक्षित)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रार्थना की विशिष्टता

■ पुष्कर नाथ माटे

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना डा. केशव बलिराम हेडगेवार द्वारा 1925 में विजयादशमी के दिन की गई। इसके कुछ दिनों बाद मैदान पर पहली दैनिक शाखा को नागपुर के मोहिते के बाड़े में प्रारंभ हुई। अन्नाजी सोहोणी ने स्वयंसेवकों को लाठी चलाना सिखाया। बालासाहब देवरस, इसी पहली शाखा के स्वयंसेवक थे। मैदान में शाखा लगने के बाद एक प्रार्थना होने का भी विचार आया। उन दिनों अखाड़ों में मराठी में प्रार्थना होती थी। अतः प्रथम प्रार्थना में, मराठी और हिंदी के कुछ भाग मिलाकर प्रार्थना बनाई गई। उद्घोष के रूप में 'राष्ट्र गुरु श्री समर्थ रामदास स्वामी की जय' प्रार्थना में जोड़ा गया। पहली प्रार्थना में दो पद थे। पहला पद मराठी में और दूसरा हिंदी में। प्रारंभिक प्रार्थना के मूल भाव के रूप में देशभक्ति, मातृभूमि की वंदना, रामभक्ति, हनुमान के शील और धर्म-रक्षण का संकल्प दिखाई देता है। बाद में इसी भाव को संस्कृत पद्य रूप में ढालकर आज की संघ प्रार्थना बनी। मुख्य रूप से, डा. केशव बलिराम हेडगेवार ने मनुष्य के स्वभाव को पहचानकर दो बल स्थान अर्थात आधार-स्तंभ स्थापित किए- 'भारत माता का प्रेम' एवं 'भगवा ध्वज की असीम भक्ति'। इन्हीं भावों को स्वयंसेवकों के दैनंदिन जीवन का हिस्सा बनाने के लिए 'संघ-प्रार्थना' का विचार साकार हुआ। डा. हेडगेवार ने इसी उद्देश्य से एक दैनिक प्रार्थना का विचार, शाखा के साथ जोड़ा। यह भगवा ध्वज के समक्ष नित्य मनःपूर्वक सामूहिक प्रार्थना का विचार था।

संघ-प्रार्थना केवल मंत्रोच्चारण नहीं है, अपितु श्रद्धा को विश्वास में बदलने का साधन है, जो व्यक्ति को राष्ट्रकार्य में निरंतरता और स्थिरता प्रदान करता है। फरवरी 1940 (नागपुर) में नरहरी नारायण भिड़े (भिड़े गुरुजी) ने प्रार्थना का संस्कृत पद्य रूप दिया। वर्तमान में "नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे" राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की आधिकारिक प्रार्थना है। यह प्रार्थना संस्कृत भाषा में है और इसकी केवल अंतिम पंक्ति 'भारत माता की जय' हिंदी में है। इसे संघ की सभी शाखाओं में अनिवार्य रूप से गाया जाता है।

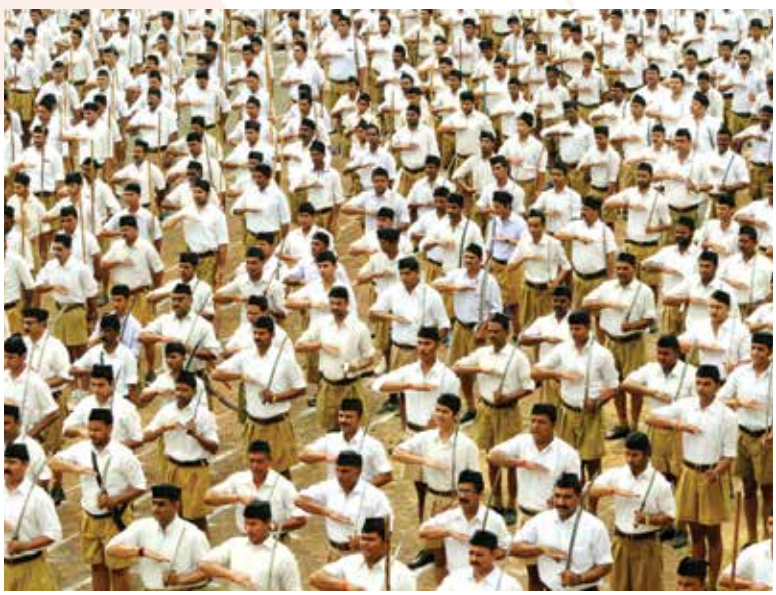

संघ प्रार्थना में तीन श्लोक हैं। पहला श्लोक, मातृभूमि वंदना और समर्पण को परिलक्षित करता है। दूसरा श्लोक, प्रभु से आशीर्वाद और कठिन मार्ग पर शक्ति की प्रार्थना को संकल्पित है और दूसरे श्लोक के अंतिम चरण में और तीसरा श्लोक के प्रारंभ में जिन पांच गुणों की चर्चा की गई है- वह पांच गुण क्रमशः वीरव्रत, ध्येयनिष्ठा, संगठन-शक्ति,

शीलवान और राष्ट्र वैभव को समर्पित है। जबकि अंतिम पद्य भारत माता की जय का उदघोष करता है। डा. हेडगेवार का उदघोष वाक्य था-"संघ का कार्य व्यक्ति निर्माण है।" यह व्यक्ति निर्माण इसी प्रार्थना की साधना से प्रारंभ होता है। हर स्वयंसेवक इससे यह सीखता है कि सच्चा जीवन वही है जो दूसरों के लिए जिया जाए। यह प्रार्थना केवल गीत नहीं, बल्कि संघ के स्वयंसेवकों के लिए मंत्र, साधना और जीवनदर्शन है।

संघ की प्रार्थना का एक विशिष्ट गुण है-वैदिक संस्कार और राष्ट्रभक्ति का संगम। इसमें वेदांत, उपनिषद, गीता और महाभारत की आत्मा एक साथ ध्वनित होती है। साथ ही, यह राष्ट्रीय चेतना से भी ओत-प्रोत है। प्रार्थना का प्रत्येक वाक्य संघ के स्वयंसेवक के लिए एक संस्कार-वचन का कार्य करता है। संघ प्रार्थना में अद्वैत भाव और कर्मयोग के समन्वित स्वर दिखाई देते हैं। इसमें भारतभूमि को वात्सल्य (ममता) से भरी माता के रूप में संबोधित किया गया है। भारतीय संस्कृति में भूमि को माता मानने की परंपरा अति प्राचीन है। ऋग्वेद में "भूः माता" का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रार्थना में इसी प्राचीन रूपक को राष्ट्रीयता से जोड़ा गया है। यह भारतभूमि को केवल भूगोल नहीं, अपितु जन-चेतना, स्मृति-परंपरा और धर्ममूल्य की संयुक्त छवि के रूप में स्थापित करता है। यहां व्यक्ति कहता है कि मेरी पहचान, सुख और सुरक्षित अस्तित्व तुम्हीं से है। प्रार्थना, उपनिषदों के 'एकात्मभाव' को आत्मसात करती है। उपनिषदों में "एकात्मभाव" के दो मुख्य सूत्र प्राप्त होते हैं-ईशावास्य उपनिषद में कहा गया है कि "ईशावास्यमिदं सर्वं" अर्थात सबमें ईश्वर का वास है। साथ ही, छांदोग्य उपनिषद का कथन है "तत्वमसि" अर्थात आत्मा और ब्रह्म एक हैं। संघ की प्रार्थना इस "एकत्व" को राष्ट्रात्मक चेतना पर लागू करती है।

हिंदू जीवन दृष्टि में व्यक्ति को अपनी पहचान राष्ट्र की संस्कृति से मिलती है। संघ इसी को स्वयंसेवक में साकार करने की प्रेरणा देता है। संघ राष्ट्र-हित को सर्वोपरि रूप में देखता है और उसी को प्रार्थना में अभिव्यक्त करता है। दार्शनिक रूप से, प्रार्थना गीता के निष्काम कर्म योग से साम्यता का भाव रखती है। व्यक्ति अपने निजी लाभ के लिए नहीं, एक बड़े नैतिक लक्ष्य के लिए काम करता है। गीता के कर्मयोग का मूल सिद्धांत, "कर्मण्येवाधिकारस्ते" और "मां कर्मफलहेतुर्भूः" की बात कहता है। संघ प्रार्थना ठीक यही भावना उत्पन्न करती है कि राष्ट्र के लिए कर्म करो, फल की चिंता मत करो। यहां राष्ट्र कोई राजनीतिक इकाई नहीं, बल्कि धर्म, संस्कृति, नैतिकता का संयुक्त प्रतीक है। संघ प्रार्थना में वर्णित 'हिंदू राष्ट्र' कोई राजनीतिक राज्य नहीं, बल्कि सांस्कृतिक सभ्यता की संकल्पना स्वरूप है। 'हिंदू' शब्द यहां धार्मिक पहचान नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-मूल्य, सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, कर्तव्य और अनुशासन का समष्टि-नाम है।

संघ-प्रार्थना एक दैवी शक्ति को सम्बोधित है, जिसे भारतीय समाज और राष्ट्र के हृदय में व्याप्त माना गया है। प्रार्थना स्वयंसेवक की आत्मनिष्ठा की प्रतिज्ञा बनकर उसे दिशा देती है। हम अपना कर्तव्य निष्ठापूर्वक निभाएंगे। दार्शनिक रूप से यह कर्तव्यबद्ध राष्ट्रीयता है। हम कानूनी बाध्यता से नहीं, बल्कि आंतरिक प्रेरणा से कर्तव्यनिष्ठ रहेंगे। प्रार्थना में शक्ति की मांग भी है, लेकिन वह शक्ति वर्चस्व के लिए नहीं, बल्कि दृढ़ता, साहस, नैतिक विजय के लिए है। स्वयंसेवक इसी शक्ति से जगत को अधिक विनम्र और शिष्ट बनाने की दिशा में कार्य करेगा। यह भाव स्वयंसेवक में प्रार्थना से जागृत होता है। मार्ग कांटों से भरा है अर्थात समाज-कार्य कठिन और त्यागपूर्ण है। हमने स्वयं ही यह कठिन मार्ग अपनाया है। कठिनाई शिकायत का विषय नहीं, बल्कि कर्तव्य का स्वाभाविक भाग है।

संघ प्रार्थना का अंतिम उद्देश्य, भारत को परम वैभव तक ले जाना-यही संघ का परम लक्ष्य है। राष्ट्र का 'परं वैभव' और उपनिषदों के 'परम ब्रह्म' की अनुभूति है। संघ इस विचार को सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में ढालता है, जहां समाज धर्म, न्याय, शक्ति और ज्ञान-चारों स्तरों पर उन्नत हो। ध्यातव्य है कि यह वैभव भौतिक न होकर, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है। ■

EXPLORING THE MOVEMENT THROUGH ABVP SONGS

■ Dr. Ravi Rameshchandra Shukla

As Alice Osborn aptly puts it, "Poetry is important because it helps us understand and appreciate the world around us. Poetry's strength lies in its ability to shed a 'sideways' light on the world, so the truth sneaks up on you-no question about it. Poetry teaches us how to live. Poetry is like the Windex on a grubby car window-it bears open the vulnerabilities of human beings so we can all relate to each other better."

Poetic narrative is theoretically a feature common to all activities involving the representation of events, ideas and phenomena in a temporal context. However, it is almost invariably encountered in the context of storytelling narratives of the world. Roland Barthes has characterised them as they may 'indeed be numberless', but in Barthe's own list of narrative genres- which includes 'myths, legends, fable, tale, novella epic, history, tragedy, drama, comedy, mime, painting, stained glass window, cinema, comics, news items (and) conversation- music is conspicuous by its absence.

Current work focuses on the relevance and impact of songs sung by the Akhil Bharatiya Vidyarthi Parishad (ABVP), which fall within the genres of 'history' and 'tale' in literature. The songs of ABVP are different from popular entertainment songs like those of the Beatles' (1963) track 'I want to hold your hand' or Frankie Goes to Hollywood's 1983 'Relax'. The unique genre makes it a valuable addition to the literary world. The Beatle's songs convey a meaningful disenchantment with life and incorporate systematic narrative elements. Similarly, ABVP songs contain powerful narrative elements, including the promotion of education for all, the empowerment of youth, social reforms and nationalism. However, it is not restricted to these themes and areas only. A careful investigation of the extent of ABVP literature (which is very limited) on the subject suggests a basic conflict between the fundamental intentions of the theory of narratives and the apparent resistance of text to narrative interpretations. As H. Peter Abbott has written, 'given the presence of narrative in almost all human discourse, there is little wonder that there are theorists who place it nest to language itself as the distinctive human trait'. Similarly, Jean-François Lyotard called narration 'the quintessential form of customary knowledge. Adding to it, Abbott asserts that 'the narrative is the principal way in which our species organises its understanding of time…' In concrete terms, Abbott suggests five basic levels at which narrative can operate in popular song texts. The lyrics contain elements of narrative discourse, but these are not reflected or supported in the (neutral) songs. The songs of ABVP evolve through deep thought and lead the discourses on national, social, youth, and educational transformation and reconstruction issues. It makes ABVP an originator of discourse amongst youth in India and worldwide.

Many songs in the Geetdhara book suit this category. Like various flowers representing a range of issues and thoughts, they remain tied together by a common thread of Bharatiyata, forming a beautiful garland with an ineffable fragrance. A complex narrative discourse is

rendered through multiple media, including lyrics, music, and the arts. All the songs of Geetdhara are a product of creative lyrics composed on music. The 'saptsur or sargam' of Bharatiya tradition, borrowed from the Natyashastra of sage Bharat Muni is followed. Art is an organically embedded part of the song in the form of emotions, devotion and inspiration for the youth.

The songs of ABVP are engrossed in Bharat's traditional and cultural milieu as a society and nation. At the same time, the genre of many songs criticises the uneven economic development characteristics of colonial situations. It also represents the life of rural society and urban youth attending colleges and universities. The songs have the potential to offer a strong intellectual resistance against ideological, cultural and hegemonic distortions perpetrated by the ruling classes in India, from the British period to the present day. The songs demonstrate a historical context of the Bharatiya education system rooted in the life of society. The songs are part of the historical context of the ABVP's efforts to promote socio-cultural harmony, reform the education system and cultivate responsible and valuable youth citizens.

It also links with language, literature and Dharma (not religion), which is embedded in the Bharatiya society. The songs have helped assert the Indian identity amongst the students. The singing of the songs invigorates Bharatiyachiti (Indian Consciousness) and musical-literate culture. The meanings of the songs derive specifically from a complex history of socio-economic, political, and cultural relations. The songs are purely apolitical by nature and content. Academic writing on folk music and songs in India tends to segregate folk songs from political songs and, indeed, from popular songs in general.

Poetic Genre of ABVP songs

Every poetic genre has its distinct features. A poem could be identified as a sonnet, ballad, elegy, ode, lyric, dramatic etc. There may be poems with a proper rhyme scheme or without it. Like in 'Background Casually', Nissin Ezekiel narrates a story in three parts without proper rhyming (Ezekiel : 1976). The poems and songs of ABVP are primarily located in the figures of speech genre. The poems incorporate imagery, similes, metaphors, personification, repetition and alliteration as their subjects, which effectively convey worship of Bharatmata (Mother India), patriotism, a passion to serve society and reform it, empowerment of youth leadership and improvement in education quality and administration. Due to this reason, the language style of poems and songs is diverse. The poems incorporate figures of speech, rhythm, word length, line count, imagery and sensory details, among other elements. Some of the ABVP poems share a similar style to that used by John Keats. In the poem 'Happy Insensibility', Keats discusses celebrating beauty in ugliness (Keats : 1829). Like Keats distinguishes beauty and its absence (insensibly because our senses cannot celebrate ugliness), ABVP poems about social reforms and nationalism draw a similar distinction between good and bad societal elements.

The tone of the poems is provocative, motivational, ominous, festive, exuberant and full of hope for a better India. It is an expression of the commitment towards society and the nation. It inculcates the values, ideology and dedication of the students and youth. Therefore, the meanings and analyses of poems are deciphered in an evaluative manner. The 'text' of the poem contains a socio-cultural, political-economic and educational 'context' of Bharat and the world. ABVP voiced its stand on many issues, such as the China attack on India (1962), the national emergency (1975) and the economic reforms (1992), through its songs/poems. The main speaker in the poems is the youth of the nation. **'Ham Yuva hain, ham Karen mushkilon ka samna, mushkilon ka samna, aisa koi yuva nahin, jisake dil men ram na, ram**

na.' (We are youth having lord Rama in our hearts, who shall face all the difficulties and overcome them). The poems are given suitable titles that describe the overall philosophy of the poem. The literal meanings of the words are deciphered by denotation. It helped in defining the basic idea of the poem.

The rules of connotations have been applied to invoke the ideas in each poem's words. This leads to a deeper understanding of the poems' meaning. It helps to explain the exact message and universal truth conveyed in the poem. The poems/songs persuade through an appeal to reason and evoke the reader's or listener's emotions. There are mainly two types of songs. The ekalgeet (solo song) is sung by one person. Mostly, it is presented just before the address or speech by a senior karykarta or a notable guest's speech. Other songs are typically sung by one person on stage, with all the members in the gathering joining in on the chorus. Each song represents a unique literary genre and tradition. It contains the rich Indian poetic and music tradition of 'Nav Rasa' (Nine Emotions) and Sargam (solfège). The Rasas are written in the Natyasastra by the sage Bharata. These are primarily eight in number, known as the ashta-rasas (eight rasas).

The songs (geet) of ABVP are deeply ingrained in its cause for youth development, social reforms and nation-building. The songs first appeared in 1963, following the war with China (1962), during its annual national session (Rashtriya Adhiveshan), cultivating consciousness and positive energy among the youth in post–independent India. The poetic characterisation of commitments reflected in contemporary historiography is a salient peculiarity of the songs. As Starker puts it, 'what it was like to come of age in an 'out of the way place' during regimes against the nation and the students, such as democracy.

However, in post-independent India, the poems and literary methods were dominated by the left or communist writers and thinkers. They promoted and produced Marxist genres and tastes to support the political agendas of communist parties in India. Although, prima facie, the Marxist literature was said to resonate, advocating a humanitarian cause and progressive thinking, in reality, it would harbour anti-national (as the very idea of a nation is against the core values of communism), anti-cultural (it is also seen as an oppressive superstructure) and anti-religious propaganda. However, socio-cultural organisations confronted this intellectual (so-called progressive) incursion by working towards the unity of the Bharatiya society, especially among Hindus. They also promoted the poems that nurtured nationalism and the cultural ethos of the land. i.e., the Arya Samaj, Brahma Samaj, Ramakrishna Mission and Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) played a significant role before India's independence. The literature of ABVP encompasses this trajectory through its didactic songs.

The songs of ABVP are evolutionary and organic by nature. They occasionally respond to and address the challenges faced by students and youth. During the national emergency in India (1975-1977), when free speech was gagged, the press was censored and anti-emergency poetry creatively amplified the voices of people. ABVP was at the forefront of the fight for the restoration of democracy. Though the songs cannot be mistaken for great art, they were the most effective way to oppose the emergency. The songs of ABVP are not just anti-colonial, but also a creative vehicle for the nation's youth to give shape to the anti-government movement. The efficacy of ABVP songs in India has channelled a creative voice for the students. It helped them to build strong character and patriotism. The songs place special emphasis on effective bonds and solidarity for strong nation-building. These poems foster emotional and cultural bonds among young people by linking them to issues of national and socio-cultural significance. The cultural dynamics that emerged amidst anti-colonial and post-

colonial nationalism have inspired the ABVP to produce poetry/songs yearly during its annual sessions for several decades.

Conclusion

Although its impact remained minimal outside the ideological sphere of the Hindu organisation, further exploration and academic hermeneutics are required in this area, as this is an effective agency for youth development, social reform and nationalism. Besides education, youth and Indian values, the songs focus on obedient citizenship, modernity and social progress. It also asserts a legacy from the ancient past, moving the nation towards a bright future through policy interventions. 'National Youth Policy' made during the Atal Bihari Vajpayee government is an example of transcending ABVP vision into policy (Mukherjee and Chaudhary : 2010). It is also a characterisation of the anguish and audacity of the Parishad in contemporary historiography on 'what it was like to come of age in and out of the place', particularly when the governments were averse to ABVP, such as during the emergency (Starker). ■

(Author is Associate Professor, School of International Studies, Jawaharlal Nehru University, Delhi)

I सम्मान I

सुरक्षा बलों के सम्मान में अभाविप ने निकाला विजय मार्च

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) की जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय (जेएनयू) इकाई ने सुरक्षा बलों द्वारा कुख्यात माओवादी नेता माडवी हिड़मा को मार गिराए जाने पर एक विजय मार्च का आयोजन किया। मार्च साबरमती टी-पॉइंट से शुरू होकर जेएनयू मुख्य द्वार तक शांतिपूर्ण और अनुशासित तरीके से सम्पन्न हुआ, जिसमें जेएनयू के विद्यार्थियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। मार्च का उद्देश्य देश की आंतरिक सुरक्षा में तैनात जवानों के साहस, समर्पण, बहादुरी को सम्मान देना था।

कार्यक्रम के दौरान छात्रों ने "भारत माता की जय", "वंदे मातरम" जैसे नारों के साथ सुरक्षा बलों के प्रति अपना सम्मान और आभार व्यक्त किया। बड़ी संख्या में छात्रों की उपस्थिति ने स्पष्ट रूप से दर्शाया कि जेएनयू का छात्र समुदाय देश की सुरक्षा और राष्ट्रीय अखंडता के मुद्दों पर एकजुट खड़ा है।

अभाविप जेएनयू अध्यक्ष मयंक पांचाल ने कहा कि विजय मार्च सुरक्षा बलों के पराक्रम के प्रति कृतज्ञता का प्रतीक है। हिड़मा देश के लिए एक बड़ा खतरा था,

और उसका मारा जाना राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जेएनयू का छात्र समुदाय देशहित के मुद्दों पर हमेशा की तरह दृढ़ता के साथ खड़ा है। यह मार्च उसी भावना का प्रमाण है।

अभाविप जेएनयू मंत्री प्रवीण पीयूष ने कहा कि यह कार्यक्रम उन वीर जवानों के सम्मान में है जो राष्ट्रीय सुरक्षा को सर्वोपरि रखते हुए अपने प्राणों की बाज़ी लगा देते हैं। जेएनयू के छात्रों ने आज दिखाया है कि विश्वविद्यालय केवल अकादमिक विमर्श का नहीं, बल्कि राष्ट्रीय कर्तव्यबोध का भी केंद्र है। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

देहरादून में होगा अभाविप का 71वां राष्ट्रीय अधिवेशन

विश्व के सबसे बड़े छात्र संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) का 71वां राष्ट्रीय अधिवेशन देवभूमि उत्तराखंड की राजधानी देहरादून में आयोजित किया जा रहा है। अधिवेशन के उद्घाटन सत्र में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के पूर्व अध्यक्ष एस. सोमनाथ मुख्य अतिथि के रूप में हिस्सा लेंगे। आगामी 28 से 30 नवंबर तक होने वाले अधिवेशन का आयोजन देहरादून स्थित परेड ग्राउंड में किया जाएगा। अधिवेशन में अभाविप के राष्ट्रीय पदाधिकारियों के साथ ही पंद्रह सौ से अधिक प्रतिनिधि कार्यकर्ता सम्मिलित होंगे। तीन दिवसीय अधिवेशन से पहले पूर्व केंद्रीय कार्यसमिति एवं राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद बैठक का भी आयोजन होगा। देश भर से आने वाले प्रतिनिधियों के स्वागत के लिए स्वागत समिति भी बनाई गई है। स्वागत समिति देहरादून में विभिन्न स्थानों पर प्रतिनिधियों का भव्य स्वागत करेगी।

राष्ट्रीय अधिवेशन के दौरान परेड ग्राउंड से भव्य शोभायात्रा निकाली जाएगी, जिसमें विभिन्न प्रांतों से आने वाले प्रतिनिधि अपने-अपने पारंपरिक परिधान में रहेंगे। अधिवेशन परिसर का नाम भगवान बिरसा मुंडा रखा गया है, जबकि मुख्य सभागार का नाम देश के पहले सीडीएस जनरल बिपिन रावत के नाम पर रखा गया है। अधिवेशन की पूर्व संध्या पर अभाविप के कार्यों एवं उत्तराखंड की संस्कृति पर केंद्रित प्रदर्शनी का उद्घाटन होगा, प्रदर्शनी का नाम रानी अबक्का के नाम पर रखा गया है। अधिवेशन का शुभारंभ 28 नवंबर को होगा। ध्वजारोहण के पश्चात महामंत्री प्रतिवेदन होगा, इसके बाद निर्वाचित राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं महामंत्री अपने दायित्व का ग्रहण करेंगे। तीन दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन में समसामयिक एवं शैक्षिक विषयों पर प्रस्ताव भी पारित किए जाएंगे। अधिवेशन में दो महत्वपूर्ण विषयों पर भाषण होगें। अधिवेशन के दूसरे दिन शोभायात्रा एवं खुला अधिवेशन का आयोजन भी किया जाएगा, खुले अधिवेशन में छात्र नेताओं का संबोधन होगा। अधिवेशन

के अंतिम दिन युवा पुरस्कार समारोह का आयोजन एवं नई कार्यकारिणी की घोषणा की जाएगी।

अधिवेशन स्थल का भूमि-पूजन संपन्न

राष्ट्रीय अधिवेशन के निमित्त देहरादून स्थित परेड ग्राउंड में आयोजित होने वाले अधिवेशन के लिए 71 वेदपाठी पुरोहितों द्वारा वैदिक वेद मंत्रों के साथ भूमि पूजन संपन्न हुआ। भूमि पूजन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उत्तराखण्ड प्रांत के प्रांत प्रचारक डा. शैलेन्द्र, पश्चिम उत्तर प्रदेश क्षेत्र के क्षेत्रीय संगठन मंत्री मनोज निखरा, क्षेत्रीय सह-संगठन मंत्री विपिन गुप्ता, उत्तराखण्ड प्रांत के प्रांत अध्यक्ष डा. जे. पी. भट्ट, प्रांत मंत्री ऋषभ रावत एवं प्रांत संगठन मंत्री अंकित सुंदरियाल उपस्थित रहे।

तीन दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन में सहभागी होने वाले प्रतिनिधि शिक्षा क्षेत्र में विभिन्न परिवर्तनों की समसामयिक स्थिति पर चर्चा करेंगे। साथ ही संगठनात्मक, रचनात्मक एवं आंदोलनात्मक विषयों तथा लक्ष्यों का निर्धारण करने के लिए मंथन किया जाएगा। अभाविप को भारत की युवाशक्ति के प्रतिनिधि संगठन होने के नाते इस दायित्व का बोध भी है कि भारत के समसामयिक मुद्दों और चुनौतियों के समाधान में युवाओं की भूमिका क्या होगी? यह भी अधिवेशन में निर्धारित किया जाएगा। इस दृष्टि से अभाविप का उत्तराखण्ड राष्ट्रीय अधिवेशन एक मील का पत्थर साबित होने जा रहा है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उत्तराखण्ड प्रांत के प्रांत प्रचारक डा. शैलेन्द्र के अनुसार अभाविप का राष्ट्रीय अधिवेशन उत्तराखण्ड की पावन धरा पर आयोजित होना अत्यंत हर्ष का विषय है। उत्तराखण्ड की भूमि को देवभूमि कहा जाता है और इस स्थान का भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में प्रमुख स्थान है। निश्चित ही ऐसी पावन धरा पर राष्ट्र प्रथम की भावना के साथ कार्य करने वाले संगठन का यह अधिवेशन सफल और ऐतिहासिक होगा।

प्रतीक चिह्न एवं पोस्टर का विमोचन

देवभूमि उत्तराखण्ड में आयोजित होने वाले अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) के 71वें राष्ट्रीय अधिवेशन के प्रतीक चिह्न एवं पोस्टर का विमोचन देहरादून स्थित परेड ग्राउंड में अधिवेशन के निमित्त अस्थाई रूप से बसाए गए 'भगवान बिरसा मुंडा नगर' में किया गया। अभाविप द्वारा गत नवंबर 4 को जारी किए गए 71वें राष्ट्रीय अधिवेशन के प्रतीक चिह्न में क्रमशः चारों धाम बद्रीनाथ, द्वारका, जगन्नाथ पुरी और रामेश्वरम का चित्र उद्धृत किया गया है, जो विशिष्ट भारतीय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहर के परिचायक हैं। साथ ही मोक्ष तथा आध्यात्मिक शुद्धि के प्रतीक है। चारों धाम के पीछे गिरिराज हिमालय है, जिसका भारतीय जलवायु, संस्कृति, परम्परा तथा धर्म पर विशेष प्रभाव है। प्रतीक चिह्न के निचले अर्ध भाग में देवप्रयाग संगम को दर्शाया गया है, जिसमें अलकनंदा और भागीरथी नदी के प्रवाह के पावन मिलन से जीवन तथा मोक्षदायिनी मां गंगा आगे प्रवाहित होती हैं। प्रतीक चिह्न के रंग संयोजन को तिरंगानुमा किया गया है, जो भारत के राष्ट्रीय गीत वंदे मातरम की 150वीं वर्षगांठ एवं राष्ट्रीय एकता को दर्शाता है। प्रतीक चिह्न के ऊपरी हिस्से में श्वेत रंग में 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद' का नाम उद्धृत है।

अभाविप के राष्ट्रीय महामंत्री डा. वीरेंद्र सिंह सोलंकी के अनुसार अभाविप ने ध्येय यात्रा के 77 वर्षों को पूर्ण कर लिया है तथा विश्व के सबसे बड़े छात्र संगठन के रूप में सकारात्मक शैक्षिक परिवेश बनाने के लिए प्रयासरत है। आज, सभी क्षेत्रों में भारतीय दर्शन से नवाचार लाने की दिशा में भी आगे बढ़ रहे हैं। उसी क्रम में, अभाविप अपना राष्ट्रीय अधिवेशन उस स्थान पर करने जा रही है जो धर्म तथा सांस्कृतिक मूल्यों का परिचायक है। सभी कार्यकर्ता राष्ट्रीय अधिवेशन को लेकर काफी उत्साहित हैं और जल्द ही देवभूमि में इन विविधताओं के साथ लघु भारत के दर्शन होंगे।

अभाविप के नए अध्यक्ष प्रा. रघुराज किशोर तिवारी तथा डा. सोलंकी राष्ट्रीय महामंत्री के रूप में पुनर्निर्वाचित

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) के नए राष्ट्रीय अध्यक्ष पद के लिए प्रा. रघुराज किशोर तिवारी (रीवा) को चुना गया है। साथ ही राष्ट्रीय महामंत्री के पद पर डा. वीरेन्द्र सिंह सोलंकी (इंदौर) पुनर्निर्वाचित हुए हैं। अभाविप के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा राष्ट्रीय महामंत्री की

निर्वाचन प्रक्रिया के चुनाव अधिकारी एवं अभाविप की राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद में विशेष आमंत्रित सदस्य प्रा. (डा.) मासाड़ी बापूराव ने निर्वाचन परिणामों की घोषणा करते हुए बताया है कि दोनों पदाधिकारी उत्तराखंड की राजधानी देहरादून में आयोजित होने वाले 71वें राष्ट्रीय अधिवेशन में अपना कार्यभार संभालेंगे।

जानकारी के अनुसार प्रा. रघुराज किशोर तिवारी मूलतः मध्यप्रदेश के रीवा निवासी हैं। जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय (जबलपुर) से कृषि विज्ञान विषय में पीएचडी तक शिक्षा ग्रहण करने वाले प्रा. तिवारी जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय (जबलपुर) के रीवा परिसर में आचार्य के पद पर कार्यरत हैं। विद्यार्थी जीवन से कार्यकर्ता रहते हुए प्रा. तिवारी कृषि महाविद्यालय (रीवा) के निर्वाचित छात्रसंघ अध्यक्ष एवं महाकौशल प्रांत के प्रांत मंत्री भी रह चुके हैं। शिक्षक के रूप में प्रा. तिवारी को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा अपने विश्वविद्यालय के सर्वश्रेष्ठ शिक्षक का पुरस्कार (2014) एवं नेपाल के प्रतिष्ठित त्रिभुवन विश्वविद्यालय के द्वारा विशिष्ट वैज्ञानिक पुरस्कार (2016) से सम्मानित किया जा चुका है। साथ ही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 125 से अधिक शोध पत्र एवं कृषिविज्ञान विषय की तीन पुस्तकों का प्रकाशन, 50 से अधिक लघु शोध प्रबंध एवं तीन शोध प्रबंधों का कार्य आपके निर्देशन में हुआ है। प्रधान अन्वेषक के रूप में प्रा. तिवारी ने फिलीपींस स्थित अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान में आयोजित संयुक्त अनुसंधान परियोजना में विश्वविद्यालय का नेतृत्व भी किया है। मध्यप्रदेश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन की समिति में सदस्य के रूप में उनकी महती भूमिका रही है। पूर्व में वह महाकौशल प्रांत अध्यक्ष, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष (2006-09) तथा वर्तमान में आप कृषि विद्यार्थी कार्य के प्रमुख सलाहकार एवं राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद के विशेष निमंत्रित सदस्य हैं।

इसी तरह राष्ट्रीय महामंत्री पद के लिए पुनः निर्वाचित डा. वीरेंद्र सिंह सोलंकी मूलतः मध्य प्रदेश के इंदौर निवासी हैं। श्री अरबिंदो इंस्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस (इंदौर) से एमबीबीएस तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद डा. सोलंकी सामुदायिक चिकित्सा की विशेषता के साथ डॉक्टर ऑफ़ मेडिसिन में अध्ययनरत हैं। 2014 से संपर्क में आने वाले डा. सोलंकी अभाविप के एलोपैथी विद्यार्थी कार्य-मेडीविज़न के माध्यम से आयुर्विज्ञान एवं दंत चिकित्सा शिक्षा के विद्यार्थियों में राष्ट्रीय नेतृत्व प्रदान कर विभिन्न मुद्दों के सफल नियोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने देवी अहिल्या विश्वविद्यालय (इंदौर) में परीक्षाओं में अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार के विषय में कुलपति के निलंबन की मांग पर सफल आंदोलन का भी नेतृत्व किया। मध्य प्रदेश में निजी आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों में व्यापारीकरण की मानसिकता से बढ़ाए गए प्रवेश शुल्क की वापसी एवं 2018 में एक अन्य बंद हुए निजी मेडिकल महाविद्यालय के विद्यार्थियों के भविष्य के लिए हुए आंदोलन का भी उन्होंने नेतृत्व किया। समाज के वंचित वर्ग हेतु कम शुल्क पर चिकित्सीय परामर्श एवं औषधि वितरण की सेवा परिवार द्वारा चलाए जा रहे चिकित्सालय से करते हैं। पूर्व में डा. सोलंकी महाविद्यालय अध्यक्ष, इंदौर महानगर मंत्री, प्रांत मेडिविजन प्रमुख, केंद्रीय कार्यसमिति सदस्य, मेडिविजन राष्ट्रीय संयोजक, राष्ट्रीय मंत्री आदि दायित्वों का निर्वहन कर चुके हैं। आगामी सत्र 2025-26 के लिए राष्ट्रीय महामंत्री के दायित्व पर वह पुनर्निर्वाचित हुए हैं।

देहरादून में होगा बिरसा संदेश यात्रा का समापन

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एवं जनजातीय गौरव के प्रतीक भगवान बिरसा मुंडा के जन्म की 150वीं वर्षगांठ पर

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) द्वारा झारखण्ड के खूंटी जिले में स्थित भगवान बिरसा की जन्मस्थली 'उलिहातु' में भगवान बिरसा की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं रथ पूजन के पश्चात 'भगवान बिरसा संदेश यात्रा' का शुभारंभ किया गया। सन्देश यात्रा जब जिला केंद्र खूंटी पहुंची तो वहां पर एक भव्य संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में पूर्व केंद्रीय मंत्री तथा झारखण्ड के पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा, विशिष्ट अतिथि के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय छात्रसंघ अध्यक्ष आर्यन मान एवं विशेष अतिथि के रूप में अभाविप के राष्ट्रीय सह-संगठन मंत्री गोविंद नायक उपस्थित रहे।

'बिरसा मुंडा संदेश यात्रा' भगवान बिरसा की जन्मस्थली उलिहातु से होते हुए खूंटी, चक्रधरपुर, चाईबासा, सरायकेला, रांची, जमशेदपुर, गुमला, लोहरदगा, लातेहार, मोदिनीनगर, गढ़वा, दुद्धीनगर, राबर्ट्सगंज, वाराणसी, जौनपुर, कुशभवनपुर, रायबरेली, लखनऊ, सीतापुर, बरेली, मुरादाबाद, सहारनपुर होते हुए देहरादून स्थित परेड ग्राउंड में आयोजित होने वाले अभाविप के 71वें राष्ट्रीय अधिवेशन स्थल पर आगामी 27 नवंबर को पहुंचेगी। यात्रा के दौरान विराम स्थानों पर संगोष्ठी, नुक्कड़ नाटक, प्रदर्शनी एवं अन्य कार्यक्रमों का आयोजन कर भगवान बिरसा द्वारा जनजातीय गौरव को बढ़ाने के लिए किए गए कार्यों को आम जन तक पहुंचाया जाएगा।

युवा पुरस्कार-2025 के लिए श्रीकृष्ण पांडेय का चयन

प्रा. यशवंतराव केलकर युवा पुरस्कार-2025 की चयन समिति ने अबकी बार पुरस्कार के लिए 'स्माइल रोटी बैंक फाउंडेशन' के अध्यक्ष श्रीकृष्ण पांडेय 'आजाद' (गोरखपुर) का चयन किया गया है। वह बाल भिक्षावृत्ति रोकने, निसहाय मनोरोगियों के पुनर्वास तथा सेवा, विभिन्न कारागारों में निरूद्ध बंदियों के मनोविकास के लिए परामर्श द्वारा अपराध छोड़ समाज की मुख्यधारा में वापस आने, नशाखोरी रोकने आदि सामाजिक कार्यों से समाज में परिवर्तन लाने संबंधी उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। श्री पांडेय को यह पुरस्कार देहरादून में आगामी 28-30 नवंबर के मध्य आयोजित होने जा रहे अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) के 71वें राष्ट्रीय अधिवेशन में दिया जाएगा।

जानकारी हो कि यह पुरस्कार 1991 से प्राध्यापक यशवंतराव केलकर की स्मृति में दिया जाता है, जिन्हें अभाविप संगठन का शिल्पकार कहा जाता है। यह पुरस्कार अभाविप और विद्यार्थी निधि न्यास की एक संयुक्त पहल है, जो छात्रों की उन्नति एवं शिक्षा के क्षेत्र में काम करने के लिए प्रतिबद्ध है। पुरस्कार का उद्देश्य युवा सामाजिक उद्यमियों के काम को उजागर करना, उन्हें प्रोत्साहित करना और ऐसे सामाजिक उद्यमियों के प्रति युवाओं का आभार व्यक्त करना तथा युवा भारतीयों को सेवा कार्य के लिए प्रेरित करना है। पुरस्कार के अंतर्गत एक लाख रुपए की धनराशि, प्रमाण पत्र एवं स्मृति चिह्न प्रदान किया जाता है।

अभाविप के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रा. राजशरण शाही, राष्ट्रीय महामंत्री डा. वीरेन्द्र सिंह सोलंकी, राष्ट्रीय संगठन मंत्री आशीष चौहान एवं चयन समिति के संयोजक प्राध्यापक मिलिंद मराठे ने 'यशवंतराव केलकर युवा पुरस्कार-2025' से पुरस्कृत श्रीकृष्ण पांडेय को बधाई देते हुए उनके भविष्य के प्रयासों में सफलता की कामना की है। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

The rise of Islam The Neo-Global colonial power

■ K. N. Pandita

The person who spoke of Islam as the new global colonial power was Iran's revolutionary spiritual leader Ayatollah Khomeini. He asserted in his sermons that Islam was bound to be the universal religion bringing in a new way of life and social behaviour (Shia faction) presented in Islamic theological works. Perhaps he considered propagation not action as the methodology for popularising Islamic faith throughout the world, the Western world in particular.

Islam is a pretentious ideological antithesis of the concept of diversity. It has used all instruments of enhancing its ideological outreach. Some of its fundamental principles of orthodoxy have remained the fountain-head of power. For example, blind faith, divine will, fragility of logic, absolute submission to supreme religious authority, adherence to the principle of takiya or disguising, jamhur congregation and conduct of daily life according to comprehensiveshariaand the Jema'ah (congregation). Even tasavvuf (mysticism) was denigrated at one point of time as un-Islamic.

In kalame sufiyane shoom nist/ mathnavi-e Maulavi-e Rum nist

(This [poet's narrative] is not the sullen narrative of the Sufis/ It is not the mathnavi of Maulana Rum)

After the completion of Arab conquests, a major task before the conquerors was how to culturally Islamise the non-Arab races andintegrate them into broad Semiticethos. The most prominent and powerful of these non-Semites were the people of Aryan stock inhabiting large swaths of Central Asian, South Asian and the Mediterranean off lands. Physical conquest and transformation of these regions was complete but its social adaptation and evangelization were serious tasks inviting attention. How could these be tackled?

This was the reason why the great Islamic historian and philosopher Ibn Khaldun (14th century) wrote in al-Muqaddimah (Prolegomena) that the Arabs must understand the fact that many of the conquered non-Islamic communities whom they had integrated into their fold had to be assimilatedinto the new ethos. The task was not that simple because they were the inheritors of great civilizations. Therefore, Ibn Khaldun emphasized that the Arabs need to address the issue how they will adjust and dovetail civilizational fundamentals amicably. Dispassionate historians will adjudge them. Nevertheless, the clash of civilizations dogging the contemporary societies is alarming.

The problem became somewhat complicated with the proselytized communities of Aryan stock. This included some of the Southern European segments where the pioneers of Arabian civilization had made a foothold. So, we have had the crusades and we had also Salahu'd Din Ayyubi, who remains till this day the most celebrated warrior of the Islamists.

Central Asia, Iran, Afghanistan, Indian sub-continent, Turkistan and South Asian countries of Indonesia, Malaysia etc., too, had their share of civilizational clashes. Constantinople, standing on the East-West crossroad had special significance because geographically, it was the converging point of two civilizations.

Distanced from roots, many among them

pandered to new civilizational format just because they had abandoned the faith of their ancestors and clung to a faith ethnographically alien to them. It silently nursed in them a strong element of inferiority complex-a hangover from the days when Islam entered their lives. Circumstantially, they became the prisoners of the axiom of "more loyal than the king." They imagined that their abandonment of the ancestral past was meaningless in all its manifestations unless they volunteered to carry forward the mission of the new faith. The dilemma transformed them into hardened fanatics inadvertently nursing animosity and hatred against the race of their forebears. Now in their forebears they find everything negative and hencereprehensible. Iqbal innocently said "jo naqsh kohan aye nazaruskomita do"(destroy everything that belongs to antiquity)

The creation of a new homeland on the Indian subcontinent in 1947 is the consequence ofa millennium and half-old-story of civilization aldislike on the Indian sub-continent; it has to be understood in this background. The nearer home example is of Kashmir. However, in Iran, the factional schism took the place of civilizational divide.

This phenomenon attained varying complexion from one proto-Aryan region to another. In Iran, Central Asia and Afghanistan, for example, the resistant aborigines were wiped out lock, stock and barrel maximally through ethnic cleansing or manslaughter. Some of the aborigines who resisted conversion by coercion had to leave theirnative land at the end of the day and look for safe havens. The Parsees of Iranian origin and the Pandits of Kashmir origin are the glaring examples. We could include more groups in the category like the Kurds, Armenians, Uighurs, Yezidis, Bahais and others.

However, the exodus of Kashmiri Pandits is a peculiar case, which reveals the deep inroads made by several centuries of long foreign (Muslim and Christian) domination, which injected themixture of servitude and bondage into the Hindu psyche. Imagine nearly seven hundred thousand personnel of Indian military and para-military forces deployed in Kashmir could not save a few hundred families of Kashmiri Pandit minority either from genocide or ethnic cleansing. They remained confined to their barracks in the Badami Bagh cantonment. Such is the helplessness of Hindu mindset that despite cold-blooded murder of more than a thousand Kashmiri Hindus and finally their mass exodus from their ten-thousand-year-old homeland, no government, no political party and no civil rights organization hadthe qualms of conscience to ask for instituting a commission of enquiry into the decimation and destruction of the small religious minority (hardly 3 per cent) of Kashmiri Pandits. The Indian state miserably failed to implement such clauses of the Constitution as enjoins upon the elected government to ensure civil, constitutional and human rights of the small religious minority of Kashmiri Pandits.

The second category is of aborigines who somehow resisted the onslaught and withstood atrocities technically called violation of human rights did not depart from their original places of residence but made the invaders recognize their claim to the land and life in their native countries. India is a fine example of this category.

The highly disappointing outcome of this phenomenon is the frequently occurring incidents of violence and domination. Acquiescence to the aggressor was diluted as "Ganga-Jamuna tehzib", meaning harmonious living, and "Indian secularism" etc. What atrocities were committed under the mask of secularism In Kashmir, is almost indescribable; it was given the rosy name of Kashmiriyat and then a strong media hype to legitimize it without ever feeling any necessity to define what meaning it conveyed, so much so that late Indian Prime Minister Atal Bihari Vajpayee coined the triumvirate of "insaniyat, jamhuriyat, Kashmiriyat" as the fundamentals of the theory of treating the Kashmiris. He indirectly wanted to say that Indian rulers had neglected these three fundamental rules

of treating Kashmiris. What a dangerous and pointless political gimmick. This historically unsubstantiated phenomenon speaks about the instrumentality of Indian Congress leadership in providing a boost to Muslim one-upmanship in the in shredded the mask into pieces when the Indian Muslims demanded a separate home for themselves and got it, thanks to the intervention of thecolonizers.

The third and the last category of the victims of mass proselytization is one in which even though the entire community is converted yet it has tenaciously stuck to its aboriginal symbols, traditions and ways of life. Indonesia is the best example in this case.

But the contemporary Islam is a deviation from this categorization. This deviation has been forced by various factors. The defeat of the Ottoman Empire in 19th century by colonial powers of the west, the liquidation of the tottering Mughal Empire of India by the British colonial power in the second half of the 19th century, the rise of patriotic forces under Kemal Ataturk in Turkey and Reza Shah Pahlavi in Iran in the later part of the 19th century, emergence of Jama'at-i-Islami and other Muslim radical organizations besides the RSS, laid the foundation for awakening of suppressed Islamic nations in West and south Asia. The mass movement against the three Khanates in Central Asia in the early days of the 20th century followed by the impact of Bolshevik Revolution, gave a direction to the freedom movement in Central Asia from religious underpinning to economic prioritization. Secular modernization became exclusive to Central Asian Muslim societies with far-reaching impact. That is the reason why the Central Asian Muslims remained aloof from the jihadist ideology which engulfed the Muslim world in West Asia, South Asia and North Africa.

The discovery of hydrocarbon deposits in the Gulf has been called as the fortune and misfortune of the Muslim world. In 1905, the British got the smell of Gulf oil for the first time and with that began the sordid story of the exploitation of Arab states. Since World War-II had thrown up the US as the great super power, she nursed the ambition of obtaining monopoly over oil production, exploitation and distribution. This became the main cause of Muslim dislike and hatred for the US and its European accomplices. 9/11 was a warning message to the US. In retaliation, the US engineered cleavage of Gulf and Arab states under the oft-repeated colonial and imperial theory of divide and rule. Palestine is the sequel of this policy of colonialists.

The crisis has deepened because of inability of the Muslims to live in harmony with other communities. They are told that Islam is essentially in revolt against the centuries old social order, the Muslims are enjoined by religious canon to wipe out all other religious denomination on earth and make Islam the only path acceptable to the followers of Muhammad. Even Islamic God needs to be de-secularised and christened as Allah.

The creation of a separate homeland in the Indian sub-continent is the result, firstly of unflinching faith of the Muslims that they are born to rule and spread Islamic flag all over the globe and secondly there was no mechanism or force to confront an apparently illogical theory. In other words, the intrinsic Hindu gullibility was exploited. This craven leadership succumbed to a proposal of dividing their country into three parts:It built its leadership over bullying the vast Hindu population.

Kashmir issue is the cumulative outcome of the crescendo of Islamic resurgence as reaction to the dismemberment of the Ottoman Empire at the hands of European colonial powers. Gandhi lent full support to Ali Brothers leading the Khilafat movement and lamented the dismissal of the autocratic Ottoman Empire. Nehru applied the specimen to the Mughal downfall, and his daughter travelled a long way to pay her obeisance at the grave of the founder ofthe Mughal Empire in Kabul.

And the travesty was that Gandhi and his underlings in the Congress succumbed to the rant of Indian Islamists and openly supported

the Khilafat movement, an outright orthodox movement. Where did the secularism of Gandhi and Nehru evaporate in the thin air?

This background scenario becomes transparent when we dispassionately analyse the beginning of a radical movement in Kashmir around 1920. What did Nehru, the then prime minister of India do in October 1947 ? He snatched the crown of Kashmir from the hands of a benevolent autocratic, whose ancestors had raised the boundaries of the state of Jammu and Kashmir after making innumerable sacrifices on treacherous Himalayan heights and then handed it over to a jingoist despot whom he later befriended as his alter ego.

Islam is no more confined to the land of its birth and the lands its warriors conquered subsequently. From West Asia, North Africa, and Indian-subcontinent, it has spread to nearly 153 countries of the world, which include the European countries, the Americas and the far east (Australia and New Zealand). This is wat Ayatollah Khomeini of Iran had predicted as early as 1960s.The world politics today is chaperoned and guided by what Islamists dictate. Today, UK the mother of democracy is the most powerful "Islamic country "in the world and it has to be the same tomorrow. The rise of Islam in 21st century is a farewell signal to democracy, the political system that ruled the world unquestionably. The first to understand this epoch-making transformation was President Donald Trump, who castigated Indian democracy as the unfair Brahmanical adroitness. In the White House he drank and danced with a liveried champion of Islamic orthodoxy who commands and controls the epicentre of world terrorism and orthodoxy. ■

I दिल्ली I

छात्रा के यौन उत्पीड़न के विरोध में अभाविप ने विश्वविद्यालय प्रशासन को सौंपा ज्ञापन

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) नीत डूसू के प्रतिनिधि मंडल ने साउथ एशियन विश्वविद्यालय में बी.टेक प्रथम वर्ष की छात्रा के साथ हुए यौन उत्पीड़न की घटना के संबंध में विश्वविद्यालय के अध्यक्ष प्रा. के. के. अग्रवाल को ज्ञापन सौंपकर दोषियों पर त्वरित एवं कठोरतम कार्रवाई की मांग की है।

जानकारी हो कि साउथ एशियन विश्वविद्यालय में छात्रा के साथ हुई यौन उत्पीड़न की घटना के बाद से ही अभाविप लगातार छात्रा को न्याय दिलाने की मांग कर रही है। घटना के विरोध में अभाविप ने विश्वविद्यालय परिसर में प्रदर्शन कर न्याय की मांग उठाई थी। इसी क्रम में गत 15 अक्टूबर को अभाविप नीत डूसू के प्रतिनिधिमंडल ने विश्वविद्यालय अध्यक्ष से मिलकर निष्पक्ष, त्वरित एवं पारदर्शी जांच समिति के गठन, आंतरिक शिकायत समिति के पुनर्गठन, विश्वविद्यालय परिसर में सीसीटीवी कैमरों की स्थापना तथा छात्राओं की सुरक्षा के लिए सुरक्षा वैन की तैनाती जैसी मांगों को रखा। साथ ही अभाविप ने दोषियों के विरुद्ध शीघ्र एवं कठोर कार्रवाई करने की मांग की है।

अभाविप का स्पष्ट मानना है कि शैक्षणिक संस्थानों में इस प्रकार की घटनाएं किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं हैं। अभाविप सदैव विश्वविद्यालय परिसरों में छात्राओं की सुरक्षा एवं सम्मान की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध रही है और इस दिशा में निरंतर कार्यरत है। अभाविप की स्पष्ट मांग है कि पीड़िता को शीघ्र न्याय मिले अन्यथा अभाविप सड़क से लेकर न्यायालय तक अपनी आवाज बुलंद करेगी और न्याय मिलने तक संघर्ष जारी रखेगी। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

अभाविप के आंदोलन से झुका महाविद्यालय प्रशासन

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) प्रयाग महानगर द्वारा आर्य कन्या डिग्री महाविद्यालय में की जा रही अवैध शुल्क वसूली एवं डोनेशन के विरोध में कई दिनों से जारी आंदोलन अंततः सफल रहा। अभाविप के दृढ़ संकल्प, लगातार संवाद, ज्ञापन, विरोध-प्रदर्शन और छात्राओं के व्यापक समर्थन के परिणामस्वरूप महाविद्यालय प्रशासन ने सभी प्रमुख मांगों को स्वीकार कर लिया। निर्णय के अंतर्गत कालेज प्रशासन ने आठ हजार रुपए की अतिरिक्त शुल्क वसूली को तत्काल समाप्त करने की घोषणा की है। साथ ही, विद्यार्थियों से महर्षि दयानंद संस्थान के नाम पर वसूले जा रहे पांच हजार रुपए के डोनेशन को भी निरस्त कर दिया। यह निर्णय छात्र-हित में एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कदम माना जा रहा है।

अभाविप ने लगातार यह मुद्दा उठाया था कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अन्य संघटक कालेजों में विधि स्नातक पाठ्यक्रम की प्रथम वर्ष की छात्राओं से पचास हजार रुपए (जिसमें पांच हजार रुपए का सिक्योरिटी शुल्क शामिल है) से अधिक शुल्क नहीं लिया जाता, जबकि आर्य कन्या डिग्री महाविद्यालय में 53 हजर रुपए शुल्क के अतिरिक्त पांच हजार रुपए का अनिवार्य डोनेशन वसूला जा रहा था, जो विश्वविद्यालय की निर्धारित शुल्क संरचना का खुला उल्लंघन था।

अभाविप ने इस मुद्दे पर गत 30 अक्टूबर को ज्ञापन देने के बाद गत 6 नवंबर को महाविद्यालय प्रशासन के विरुद्ध विरोध-प्रदर्शन किया था। इन शांतिपूर्ण एवं लोकतांत्रिक आंदोलनों के बावजूद प्रशासन की निष्क्रियता ने विद्यार्थियों में व्यापक रोष उत्पन्न किया। अभाविप ने स्पष्ट चेतावनी दी थी कि यदि जल्द ही निर्णय नहीं लिया गया, तो अभाविप उग्र आंदोलन करने को बाध्य होगी। अभाविप के प्रयासों के बाद अंततः कालेज प्रशासन ने मांग को स्वीकार कर लिया और अधिक लिए जा रहे शुल्क को समाप्त कर दिया।

महानगर मंत्री प्रतीक मिश्रा सूरज ने कहा कि यह जीत छात्र एकता और संगठन की दृढ़ प्रतिबद्धता का परिणाम है। अभाविप ने आर्य कन्या डिग्री कालेज में हो रहे आर्थिक अन्याय को

समाप्त कर छात्राओं के अधिकारों की रक्षा की है। यह आंदोलन केवल एक महाविद्यालय तक सीमित नहीं, बल्कि सभी छात्रों के आत्मसम्मान और न्याय की जीत है। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

सुधी पाठकों!

शिक्षा क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका के रूप में 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' नवम्बर-2025 अंक आपके समक्ष प्रस्तुत हैं। यह अंक महत्वूर्ण लेख एवं विभिन्न समसामयिक घटनाक्रमों एवं खबरों को समाहित किए हुए हैं। आशा है, यह अंक आपके आवश्यकताओं के अनुरूप उपादेय साबित होगा। कृपया 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' से संबंधित अपने सुझाव एवं विचार हमें नीचे दिए गए संपादकीय कार्यालय के पते अथवा ई-मेल पर अवश्य भेजें : -

'राष्ट्रीय छात्रशक्ति'
26, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23216298
www.chhatrashakti.in
rashtriyachhatrashakti.abvp@gmail.com
www.facebook.com/Rchhatrashakti
www.twitter.com/Rchhatrashakti
www.instagram.com/ Rchhatrashakti

डूसू कार्यकारी परिषद चुनाव में अभाविप की छह पदों पर जीत

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्रसंघ कार्यकारी परिषद के चुनाव में अभाविप ने छह पदों पर जीत हासिल की है। कार्यकारी परिषद के 11 पदों के लिए चुनाव कराए गए थे। चुनाव में अभाविप के छह पदों पर क्रमशः अंकित, आर्य तंवर, सिद्धार्थ चौधरी, मोहित यादव, पार्थ त्यागी और जयदीप ने जीत दर्ज की। इन 11 पदों में दो पद छात्राओं के लिए आरक्षित थे, परंतु एक ही पद पर नामांकन होने से एक पद खाली रह गया।

जानकारी हो कि दिल्ली विश्वविद्यालय छात्रसंघ की कार्यकारी परिषद का चयन दिल्ली विश्वविद्यालय के अंतर्गत कालेजों की छात्रसंघ यूनियनों के अध्यक्ष और सेंट्रल काउंसिल के सदस्यों द्वारा मतदान के माध्यम से किया जाता है। यह चुनाव प्रक्रिया दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा निर्धारित नियमों और पारदर्शी प्रणाली के अंतर्गत संपन्न होती है।

अभाविप दिल्ली के प्रांत मंत्री सार्थक शर्मा के अनुसार 11 में से 6 पदों पर मिली विजय छात्र हित के प्रति निष्ठा एवं प्रतिबद्धता का प्रमाण है। अभाविप प्रतिबद्धता के साथ दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रहित के लिए आगे भी सतत रूप से कार्य करते हुए छात्र अधिकारों और शिक्षा के स्तर को आगे बढ़ाने के लिए समर्पित रहेगी। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

वित्तपोषित महाविद्यालयों को वित्तीय सहयोग देने का निर्णय स्वागतयोग्य : अभाविप

दिल्ली सरकार द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय के 12 वित्तपोषित महाविद्यालयों को 108 करोड़ रुपए का वित्तीय सहयोग देने के निर्णय का अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद ने स्वागत किया है। अभाविप का मानना है कि यह निर्णय दिल्ली के उच्च शिक्षण संस्थानों की स्थिति को सुदृढ़ करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक पहल है। इस निर्णय से दिल्ली विश्वविद्यालय के 12 वित्तपोषित महाविद्यालयों की अकादमिक स्थिति में सुधार होगा। साथ ही वहां कार्यरत अध्यापक एवं कर्मचारियों को भी बड़ी राहत मिलेगी। इस कदम से इन महाविद्यालयों की वित्तीय और शैक्षणिक स्थिति दोनों ही सुदृढ़ होंगी। अभाविप का कहना है कि दिल्ली सरकार का यह निर्णय लंबे समय से चली आ रही वित्तीय समस्याओं को दूर करने की दिशा में सराहनीय कदम है। इससे अध्यापकों, कर्मचारियों और विद्यार्थियों-तीनों को लाभ मिलेगा। अभाविप आशा करती है कि सरकार भविष्य में भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे ठोस कदम उठाती रहेगी, ताकि दिल्ली शिक्षा के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान को और मजबूत कर सके। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

विवादित शपथपत्र भरने के मुद्दे पर उच्च शिक्षा सचिव से मिला अभाविप का प्रतिनिधिमंडल

पंजाब विश्वविद्यालय हाल ही में छात्रों के लोकतांत्रिक अधिकारों पर प्रहार करने की कोशिश के कारण चर्चा का केंद्र बिंदु बन गया है। इस वर्ष नए सत्र में विद्यार्थियों से पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा एक विवादित शपथपत्र भरने का निरंतर दबाव बनाया जा रहा था। विवादित शपथपत्र संबंधी निर्णय की वापसी और छात्रों के लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) के एक प्रतिनिधिमंडल ने दिल्ली में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के उच्च शिक्षा विभाग के सचिव विनीत जोशी से मुलाकात करके शपथपत्र संबंधी निर्णय को वापस लेने की मांग की। गत 4 नवंबर को उच्च शिक्षा सचिव से मुलाकात करने वाले प्रतिनिधिमंडल में अभाविप के राष्ट्रीय महामंत्री डा. वीरेंद्र सिंह सोलंकी, अभाविप की राष्ट्रीय मंत्री कु. शिवांगी खरवाल, पंजाब विश्वविद्यालय छात्रसंघ के अध्यक्ष गौरववीर सिंह सोहल, पंजाब विश्वविद्यालय की छात्रा एवं खेलो भारत की राष्ट्रीय सह संयोजिका कु. अर्पिता मलिक तथा अभाविप के उत्तर क्षेत्र संगठन मंत्री गौरव अत्री शामिल थे।

अभाविप प्रतिनिधिमंडल ने सीनेट से संबंधित मांग रखते हुए कहा कि सीनेट के अंदर छात्र प्रतिनिधित्व को स्थान मिलना चाहिए ताकि विद्यार्थियों की आवाज को प्रशासन के समक्ष और प्रमुखता से उठाया जा सके। अभाविप की मांग पर उच्च शिक्षा सचिव ने विचार कर पूरा करने का आश्वासन दिया है।

पंजाब विश्वविद्यालय छात्र संघ अध्यक्ष गौरववीर सिंह सोहल के अनुसार इस शपथपत्र के पीछे छात्रों के लोकतांत्रिक अधिकारों को कुचलने की मंशा है। पहले दिन से ही अभाविप ने शपथपत्र संबंधी निर्णय का विरोध किया था और कुलपति कार्यालय के बाहर धरना और घेराव भी किया। अभाविप की प्राथमिकता छात्र हित है और अभाविप छात्र हित की लड़ाई निरंतर पंजाब विश्वविद्यालय में लड़ रही है। शपथपत्र संबंधी निर्णय की वापसी का निर्णय हर छात्र की जीत है और अभाविप निरंतर ही छात्र हित के लिए कार्य करती रहेगी।

अभाविप के राष्ट्रीय महामंत्री डा. वीरेंद्र सिंह सोलंकी ने कहा कि पंजाब विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों पर थोपे गए निर्णय छात्रों की स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक अधिकारों पर सीधा प्रहार था। अभाविप का मानना है कि विश्वविद्यालयों में संवाद, स्वतंत्र अभिव्यक्ति और भागीदारी ही अकादमिक संस्कृति की पहचान है। ऐसे में पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा छात्रों पर शपथपत्र थोपना बिल्कुल गलत एवं छात्रों के अधिकारों का हनन करने वाला है। शपथपत्र वापसी के निर्णय से यह सिद्ध हुआ है कि छात्र शक्ति की आवाज प्रभावशाली और निर्णायक होती है। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

नवाचार और आत्मनिर्भरता पर गोलमेज सम्मेलन का आयोजन

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) के आयाम सविष्कार (मालवा) का गोल-मेज़ सम्मेलन इंदौर के एक्रोपोलिस इंक्यूबेशन और इनोवेशन हब में संपन्न हुआ। "कृषि प्रौद्योगिकी और स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी आत्मनिर्भर भारत के दो स्तंभ" विषय पर आयोजित कार्यक्रम में कृषि और स्वास्थ्य के क्षेत्र में नवाचार और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के विषय पर विस्तार से चर्चा की गई।

स्वदेशी जागरण मंच तथा अभाविप के संयुक्त तत्वावधान में सविष्कार मालवा द्वारा आयोजित कार्यक्रम के मुख्य अतिथि एवं अभाविप के राष्ट्रीय महामंत्री डा. वीरेंद्र सिंह सोलंकी ने कृषि प्रौद्योगिकी और स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी की क्षमता की प्रशंसा करते हुए इसे भारत की आत्मनिर्भरता की कहानी को बदलने में महत्वपूर्ण बताया। उनके विचारों ने विभिन्न हिस्सेदारों के बीच सहयोगी प्रयासों की महत्ता को रेखांकित किया। गत 10 नवंबर को आयोजित सम्मेलन में राष्ट्रीय संयोजक (सविष्कार) निसर्ग राठौड़ ने सम्मेलन के उद्देश्यों का विवरण प्रस्तुत किया। एक्रोपोलिस समूह के निदेशक अतुल एन भरत ने अपने भाषण में कृषि प्रौद्योगिकी और स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी में एकीकृत नवाचारों की आवश्यकता पर बल दिया, जो ग्रामीण आजीविका और स्वास्थ्य सेवा की पहुंच में सुधार करने में महत्वपूर्ण हैं।

सम्मेलन में भारतीय प्रबंध संस्थान (इंदौर) के कार्यक्रमों के अधिष्ठाता डा. प्रशांत सालवान ने अत्याधुनिक प्रगति और समन्वित दृष्टिकोण की महत्वपूर्ण आवश्यकता को स्पष्ट किया। उनके विचारों ने प्रतिभागियों को पारंपरिक ढांचों से परे सोचने और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए विघटनकारी नवाचारों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। सोपा के कार्यकारी निदेशक डा. डी. एन. पाठक एवं ड्रोन तकनीकी स्टार्टअप के सीईओ अभिषेक मिश्रा ने भी अपने विचार साझा किए। सेवानिवृत्त रक्षा चिकित्सा अधिकारी कर्नल (डा.) अजय सिंह ठाकुर ने नागरिक और सैन्य

संदर्भों में स्वास्थ्य सेवा नवाचारों की महत्ता पर चर्चा की, जबकि अटल इनोवेशन मिशन के तहत अटल इंक्युबेशन सेंटर प्रेस्टीज के मुख्य कार्यकारी अधिकारी डा. संजीव पाटनी ने बताया कि सहयोगात्मक ढांचे कैसे स्टार्टअप्स को सफलतापूर्वक समाधान प्रदान करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। बेटी फाउंडेशन (बायोटेक) की संस्थापक पूजा दुबे पांडे ने कृषि और स्वास्थ्य में महिलाओं को सशक्त बनाने के उद्देश्य से प्रभावी पहलों को प्रदर्शित किया।

सम्मेलन में सभी वक्ताओं और प्रतिनिधियों द्वारा दिखाई गई प्रतिबद्धता कृषि प्रौद्योगिकी और स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी के उज्ज्वल भविष्य का प्रमाण है। सविष्कार मालवा द्वारा आयोजित सम्मेलन सरकार, अकादमी और स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र के नेताओं के बीच संवाद का एक महत्वपूर्ण मंच रहा, जो कृषि प्रौद्योगिकी और स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी में अवसरों पर केंद्रित था। सम्मेलन में दीक्षा यादव (सविष्कार की राष्ट्रीय सह-संयोजिका) ने नवाचार और उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए सविष्कार की राष्ट्रीय पहलों का एक अवलोकन प्रस्तुत किया। सम्मेलन में साझा किए गए विचारों ने कृषि और स्वास्थ्य में प्रौद्योगिकी को लागू करने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण को प्रदर्शित किया, जो आत्मनिर्भरता और स्थिरता के राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप है। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

National Call for Water Conservation

Srishti Manthan, the flagship national environment conclave of Students for Development (SFD), concluded its 2025 edition at C. V. Raman Global University, Bhubaneswar. Held on 11-12 October with the central theme "Water." The two-day event brought together around 314 delegates from universities, institutions, and NGOs across India, reaffirming its stature as a vibrant national platform for environmental dialogue, knowledge-sharing and youth-led action.

Since its inception in 2023 at Lucknow, Srishti Manthan has evolved into a movement combining academic reflection, policy discussions, field-level learning and cultural expression. The 2025 edition focused on urgent issues such as climate change, biodiversity loss, rainfall variability, pollution and India's traditional water wisdom.

The conclave opened with Deep Prajjwalan and Jal Arpan, symbolizing harmony with nature. The inaugural session was graced by Govind Nayak, Gopal Arya, Ganesh Ram Singh Khuntiya, Payal and Kshama Sharma. National Convener Payal welcomed the delegates and elaborated on this year's water-centric theme.

Addressing the participants, National Joint Organising Secretary of ABVP Govind

Nayak highlighted Panch Parivartan-environment conservation, social harmony, family awareness, swadeshi and self-reliance and citizen's duty-as the pillars of national reconstruction.

National Convener (PSG) Gopal Arya underscored the decisive role of youth in environmental sustainability, while National Secretary Kshama Sharma outlined the initiatives of ABVP and its developmental verticals.

Odisha's Minister of State (Independent Charge) for Forest, Environment & Climate Change, Ganesh Ram Singh Khuntia, spoke on government policies and India's indigenous water management heritage, appreciating SFD's sustained efforts toward youth-led environmental action.

The day featured multiple thematic sessions, including a panel discussion on "Equity and Community in Bharat's Water Wisdom," a Role Model Session with Guinness World Record-holding hydrogeologist Dr. Ritesh Arya and a panel titled "Pathway to Resilience," emphasizing sustainability, community participation, education and innovation. A hands-on workshop on water audit, water sampling, rainwater harvesting and paper presentation offered practical exposure to delegates, followed by a cultural evening celebrating India's ecological ethos.

The second day began with a river site cleaning and sampling activity. A session on "Youth for Sustainability in the Context of Water, Entrepreneurship and Economy" saw resource persons Devdutt Joshi and Rahul Gaur encouraging youth to embrace sustainable livelihoods, green entrepreneurship and active environmental engagement.

An expert talk on "Technology, Science, and Policy in Water Management" by Dr. Jyoti Ranjan Patra and Payal highlighted the alarming scale of water pollution, the importance of water footprint awareness and the need for integrated technological and policy approaches.

Another panel discussion, featuring Mansi Thakar, Shyam Majumdar and Dr. Binay Jena, explored sustainability initiatives across sectors, concluding with a vote of thanks from Kaustoob.

The concluding session, attended by ABVP'S National Jt. Organising Secretary Devdutt Joshi, SFD In-charge Rahul Gaur and Payal Rai, included certificate distribution and expressions of gratitude to the volunteer teams. Rahul Gaur emphasized the continuation of collective environmental action beyond the event, while Devdutt Joshi urged participants to begin change from within.

National Convener (SFD) Payal Rai announced SFD's upcoming one-year programme and presented the Bhubaneswar Declaration, a comprehensive agenda addressing water pollution, wetland conservation, academic research, climate-resilient practices and youth-led awareness campaigns.

Key Commitments of the Bhubaneswar Declaration are as follows,

Like the youth of India committed to :

- Practising responsible water use and reducing water footprints.
- Integrating Bharatiya water knowledge with scientific research and action.
- Participating in the "One Institution-One Water Source" campaign.
- Promoting public water dialogues and adopting the LiFE (Lifestyle for Environment) principles.

Educational institutions were urged to embed environmental responsibility in curricula, strengthen eco-clubs and civic training platforms and apply traditional water wisdom in governance and research. The conclave concluded with the collective resolve: "**सर्वेपि सुखिनः सन्तु**" (Let all be happy.) ■

(Rashtriya Chhatrashakti Team)

विश्वविद्यालयों में व्याप्त समस्याओं के विरुद्ध अभाविप ने निकाला धड़क मोर्चा

विश्व के सबसे बड़े छात्र संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) ने विद्यार्थियों से जुड़ी समस्याओं के समाधान की मांग को लेकर महाराष्ट्र के नागपुर, अमरावती एवं ब्रह्मपुरी में धड़क मोर्चा निकाला। धड़क मोर्चा ने **नागपुर विश्वविद्यालय** में प्रवेश, परिणाम, पाठ्यक्रम, पद भर्ती तथा छात्रसंघ चुनाव जैसी अनेक शैक्षणिक समस्याओं के समाधान करने की मांग की। मोर्चा का नेतृत्व विदर्भ प्रांत मंत्री पायल किनाके ने किया। बाद में मोर्चे ने कुलगुरु डा. माधवी खोड़े को अपनी विभिन्न मांगों का ज्ञापन सौंपा।

धड़क मोर्चे को संबोधित करते हुए प्रांत मंत्री पायल किनाके ने कहा कि महाविद्यालय चरित्र निर्माण का केंद्र है और शिक्षा जीवन की तैयारी नहीं, बल्कि स्वयं जीवन है। विश्वविद्यालय में गिरती शैक्षणिक गुणवत्ता को देखते हुए अब समय आ गया है कि छात्रशक्ति अपनी ताकत दिखाए। यदि छात्रशक्ति एकजुट हो जाए, तो वही राष्ट्रशक्ति बन सकती है। अभाविप ने इस धड़क मोर्चे के माध्यम से विश्वविद्यालय को सच्चा आईना दिखाया है, जिससे विद्यार्थी और विश्वविद्यालय के बीच की समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

गत 13 नवंबर को धड़क मोर्चा के माध्यम से अभाविप ने मांग की है कि विश्वविद्यालय का शैक्षणिक कैलेंडर सभी पहलुओं पर विचार करके तैयार किया जाए, प्रवेश की अंतिम तिथि 15 अगस्त निर्धारित की जाए और उसी आधार पर कैलेंडर बनाकर पूरे वर्ष उसका पालन किया जाए। इसके साथ ही प्रवेश प्रक्रिया आधुनिक तकनीक का उपयोग करके पारदर्शी, सुगम और विद्यार्थियों के लिए सुविधाजनक बनाई जाए। अभाविप ने प्रवेश से जुड़ी सभी सूचनाएं विद्यार्थियों के पंजीकृत मोबाइल नंबर पर भेजने की मांग के साथ ही कई वर्षों से बाधित छात्रसंघ चुनावों को तत्काल कराने के लिए भी कहा है। प्रवेश प्रक्रिया में एजेंटों की बढ़ती भूमिका पर अभाविप ने कड़ा विरोध जताते हुए कहा कि विश्वविद्यालय प्रशासन इस सम्बन्ध पर कोई कार्रवाई नहीं कर रहा। मोर्चे में प्रवेश, परीक्षा, परिणाम, पाठ्यक्रम, छात्रवृत्ति, वसतिगृह (हॉस्टल), राष्ट्रीय शिक्षा नीति का क्रियान्वयन से जुड़े अनेक मुद्दों को प्रमुखता दी गई। मोर्चे में भंडारा, गोंदिया, वर्धा, नागपुर महानगर और ग्रामीण क्षेत्रों के लगभग पांच हजार से अधिक विद्यार्थी शामिल हुए।

उधर 14 नवंबर को **अमरावती विश्वविद्यालय** में प्रवेश, परिणाम, पाठ्यक्रम, पद भर्ती तथा छात्रसंघ चुनाव जैसी विभिन्न शैक्षणिक समस्याओं के समाधान की मांग को लेकर अभाविप ने संत गाडगेबाबा अमरावती विश्वविद्यालय पर धड़क मोर्चा निकाला। बाद में अभाविप ने विभिन्न मांगों का ज्ञापन कुलगुरु डा. मिलिंद बारहाते को सौंपा गया। मोर्चा संत गाडगेबाबा समाधि मंदिर के सामने वाले मैदान से प्रारंभ हुआ। अभाविप ने मांग की कि विश्वविद्यालय के कैलेंडर को सभी बिंदुओं का सम्यक विचार करके तैयार किया जाए। प्रवेश की अंतिम तिथि 15 अगस्त निर्धारित की जाए और उसी आधार पर सम्पूर्ण शैक्षणिक वर्ष का कैलेंडर लागू किया जाए। अभाविप ने अपनी 34 मांगों को ज्ञापन में शामिल किया है।

गोंडवाना विश्वविद्यालय में तमाम अव्यवस्थाओं पर रोष व्यक्त करते हुए गत 11 नवंबर को अभाविप ने धड़क मोर्चा निकाला। ब्रम्हपुरी में अभाविप विदर्भ प्रांत के नेतृत्व में निकाले गए धड़क मोर्चा में प्रवेश, परीक्षा, परिणाम, भर्ती, पाठ्यक्रम और छात्र संघ चुनाव से जुड़े मुद्दों पर विश्वविद्यालय प्रशासन के विरुद्ध रोष व्यक्त किया गया। बाद में विश्वविद्यालय के कुलपति मोर्चा के मंच पर आए और आश्वासन दिया कि सभी मांगें स्वीकार करके अतिशीघ्र पूरी की जाएंगी। ■

(राष्ट्रीय छात्रशक्ति टीम)

गोंडवाना विश्वविद्यालय में विभिन्न मांगों को लेकर ज्ञापन सौंपते अभाविप कार्यकर्ता।

अमरावती विश्वविद्यालय में व्याप्त समस्याओं के समाधान की मांग को लेकर प्रदर्शन करते छात्र।

RNI NO.: DELBIL/2017/73636
DATE OF POSTING: 10-11 NOVEMBER, 2025
DATE OF PUBLISHING: 8 NOVEMBER, 2025

POST OFFICE: NDGPO, NEW DELHI
POSTING REGISTRATION NO. DL(C)-11/1409/2024-26

Knowledge Character Unity

ABVP

AKHIL BHARATIYA VIDYARTHI PARISHAD

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद

71st NATIONAL CONFERENCE

28 to 30 November 2025

Bhagwan Birsa Munda Nagar
Parade Ground, Dehradun

Prof Raj Sharan Shahi
National President

Dr Virendra Singh Solanki
National General Secretary

@ABVPVoice
www.abvp.org